मेरी जीवनकथा

मोहनदास करमचंद गांधी

मेरी जीवनकथा

विद्यार्थियों के लिए विशेष आवृत्ति

मोहनदास करमचंद गांधी

सरल संक्षिप्त और स्वाध्याय

भारतन कुमारप्पा

मुद्रक और प्रकाशक

विवेक जितेन्द्र देसाई

नवजीवन मुद्रणालय

अहमदाबाद ०१४ ३८० -

फोन २७५४०६३५ - ०७९ :, २७५४२६३४

E-mail : sales@navajivantrust.org

Website: www.navajivantrust.org

मेरी प्रस्तावना

मुझे आत्मकथा कहाँ लिखनी है ! मुझे तो आत्मकथा के बहाने सत्य के मैंने जो अनेक प्रयोग किये हैं उसकी कथा लिखनी है। उसमें मेरा जीवन ओतप्रोत होने के कारण जीवन कथा जैसा हो जाए; मगर यह सही है कि राजनीतिक क्षेत्र के मेरे प्रयोग अब तो सारा हिन्दुस्तान जानता है। किन्तु मेरे आध्यात्मिक प्रयोग, जो मैं ही जान सकूँ, और जिसमें से मेरी राजनीतिक क्षेत्र पर की शक्ति भी पैदा हुई है उन प्रयोगों का वर्णन कर लेना मुझे पसंद आयेगा। मेरे प्रयोग गुप्त हुए हैं, बल्कि हुए भी नहीं है। ये सब देख सकें उसमें मुझे उसकी आध्यात्मिकता कम हुई हैं, ऐसा नहीं लगता। मेरे प्रयोगों में तो आध्यात्मिक यानी नैतिक, धर्म यानी नीति, आत्मा की दृष्टि में पालन ही हुई नीति वही धर्म है।

अर्थात् जिन चीजों का निर्णय बच्चे, युवान और बूढ़े करते हैं और कर सकते हैं उस चीजों का ही यह कथा में समावेश होगा। ऐसी कथा मैं जो तटस्थ भाव से, निराभिमान रूप से लिख सकूँ तो उसमें से दूसरे प्रयोग करनेवालों को कुछ सामग्री अवश्य मिलेगी।

आश्रम, साबरमती
शुक्ल पक्ष ११, १९८२

मोहनदास करमचंद गांधी

संपादकीय

गांधीजी की आत्मकथा और उनके दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ है। उसके कुल पृष्ठ एक हजार के करीब होते हैं। १९५२ में नवजीवन ट्रस्ट की ओर से ये दोनों पुस्तकों को एक ही ग्रंथ में संक्षिप्त आवृत्ति के रूप में प्रकट किया गया हुआ है। अभी-अभी एक नई माँग आयी है। पाठशालाओं में उपयोग में ले सकें ऐसी एक बहुत छोटी आवृत्ति प्रकाशित की जाएँ। इस माँग को पूरा करने के लिए यह पुस्तिका तैयार की गई है।

पाठशाला के बच्चों को जिन बातों में विशेष रस उत्पन्न न कर सके ऐसा लगता हो, ऐसी बातों का इसमें समावेश नहीं है और संभव हो उतना वहाँ भाषा को सरल बनाया गया है। अधिकांश प्रकरणों के अंत में निबंध और चर्चा के लिए विषय सूचित किये गये हैं। उपर के और नीचे की कक्षाएँ दोनों को ध्यान में रखकर यह स्वाध्याय तैयार किया गया है। शिक्षक को ऐसा लगे कि उसमें से अपने विद्यार्थी सरलता से जवाब दे सकें वैसा लगे उसे पसंद करना है। विद्यार्थिओं को बहुत कठिन लगे ऐसे एक या दूसरे मुद्दों की चर्चा कक्षा में समूह में करने से रसिक बन जाएँगी। ऐसी चर्चा के बाद दूसरे तास में विद्यार्थिओं को निबंध लिखने के लिए कहा जा सके।

जुलाई १९५५ **भारतन कुमारप्पा**

प्रकाशक का निवेदन

श्री भारतन कुमारप्पा ने गांधीजी की आत्मकथा और दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास ये दोनों पुस्तकों को साथ में रखकर संक्षिप्त आत्मकथा तैयार की थी। उन्होंने मूल में अंग्रेजी में किये यह संक्षेप अब गुजराती और हिन्दी में भी प्राप्त हो सकते हैं। इस संक्षेप की तरह ही, पाठशाला में अभ्यास करनेवाले विद्यार्थिओं के लिए कुमारप्पाजी ने मेरी जीवनकथा भी अंग्रेजी में तैयार की थी। यह पुस्तक उसीका हिंदी अनुवाद है।

कुमारप्पाजी ने संक्षिप्त आत्मकथा तथा 'मेरी जीवन कथा' दोनों में गांधीजी की मूल भाषा में जहाँ आवश्यकता दिखाई; यहाँ बहुत कम छूट ली है। अर्थात् एक दृष्टि से देखें तो कुमारप्पाजी के द्वारा संपादित यह दोनों पुस्तक गांधीजी के शब्दों में, गांधीजी की ही भाषा में हों, ऐसा कहा जा सकता है।

'मेरी जीवन कथा' पाठशाला के विद्यार्थियों के लिए तैयार की गई किताब है। उन्होंने प्रत्येक प्रकरण में से स्वाध्याय के प्रश्न भी निकालकर दिये हैं। पुस्तक के अंत में दिये गये यह स्वाध्याय के बारे में कुमारप्पाजी ने उनकी संपादकीय नोंध में की गई स्पष्टता जिज्ञासु अभिभावक तथा शिक्षकों को भी देख लेनी चाहिए।

फिल हाल में गांधीजी के जीवन और कार्य को समझने के लिए नये सिरेसे जिज्ञासा पैदा हुई हो ऐसा दिखाई देता है। उसे ध्यान में रखकर आत्मकथा की तरह ही पाठशाला के विद्यार्थिओं के लिए तैयार कर ली गई 'मेरी जीवन कथा' भी देश की सभी प्रादेशिक भाषाओं में देने का निर्णय नवजीवन ने किया है। उस निर्णय के रूप में गुजराती माध्यम में अभ्यास करनेवाले पाठशाला के विद्यार्थियों के लिए यह हिंदी आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है। गुजराती हिंदी पाठशालाओं द्वारा उसे उचित सत्कार मिलता रहेगा ऐसी आशा और श्रद्धा है।

३० जनवरी २००८

अनुक्रमणिका

मेरी प्रस्तावना
संपादकीय
प्रकाशक का निवेदन

भाग-१ : बचपन

१. जन्म और मातापिता
२. बचपन
३. बाल-विवाह
४. दुःखद प्रसंग
५. चोरी
६. पिताजी की बीमारी और मृत्यु
७. धर्म की झाँकी
८. विलायत की तैयारी
९. आखिर विलायत पहुँचा

भाग-२: लंडन में छात्र के रूप में

१०. मेरी पसन्द
११. सभ्य पोशाक में
१२. फेरफार
१३. लज्जाशीलता - मेरी ढाल
१४. धर्मों का परिचय

भाग-३: भारत में बारिस्टर

१५. भारत में वापसी
१६. पहला आघात

भाग-४: दक्षिण अफ्रिका में

१७. दक्षिण अफ्रिका पहुँचा
१८. प्रिटोरिया जाते हुए
१९. प्रिटोरिया में पहला दिन
२०. हिन्दुस्तानियों से परिचय
२१. मुकदमे की तैयारी
२२. इन्सान ने दरखास्त की, भगवान ने इनकार किया
२३. तीन पौण्ड का कर

भाग-५: हिन्दुस्तान की मुलाकात

२४. हिन्दुस्तान में

भाग-६: वापस दक्षिण अफ्रिका में

२५. दक्षिण अफ्रिका में तुफान की आगाही
२६. सादगी
२७. एक पुण्यस्मरण और प्रायश्चित
२८. बोअर-युद्ध
२९. कीमती उपहार

भाग-७: देश में

३०. मेरा पहला काँग्रेस
३१. बम्बई में स्थिर हुआ?

भाग-८: वापस दक्षिण अफ्रिका में

३२. फिर दक्षिण अफ्रिका
३३. गीता का अभ्यास
३४. एक पुस्तक का चमत्कारी प्रभाव
३५. फीनिक्स की स्थापना
३६. 'जुलू-विद्रोह'
३७. कस्तूरबाई की दृढ़ता।
३८. घर में सत्याग्रह
३९. सत्याग्रह का महत्त्व
४०. कारावास
४१. हमला
४२. सत्याग्रह का इतिहास
४३. सत्याग्रह का विजयोल्लास

भाग-९: स्वदेश और आश्रम की स्थापना

४४. पूना में
४५. आश्रम की स्थापना

भाग-१०: चम्पारन

४६. नील का दाग
४७. उजला पहलू

भाग-११: अहमदाबाद के मजदूरों

४८. मजदूरों के संपर्क में

भाग-१२: खेड़ा-सत्याग्रह

४९. खेड़ा-सत्याग्रह
५०. मृत्यु-शय्या पर

भाग-१३: रोलट एक्ट और राजनीति में प्रवेश

५१. रौलट एक्ट

भाग-१४: खादी का जन्म

५२. खादी का जन्म
५३. पूर्णाहुति

शब्दार्थ
स्वाध्याय

भाग-१: बचपन

१. जन्म और मातापिता

कबा गांधी मेरे पिताजी थे। उन्होंने पोरबंदर के दीवान का काम किया। पिता कुटुम्ब-प्रेमी, सत्य-प्रिय, शूर, उदार किन्तु क्रोधी थे।

पिताजी ने धन बटोरने का लोभ कभी नहीं किया। इस कारण हम भाईयों के लिए वे बहुत थोड़ी सम्पत्ति छोड़ गये थे।

पिताजी की शिक्षा केवल अनुभव की थी। आजकल जिसे हम गुजराती की पाँचवीं किताब का ज्ञान कहते हैं, उतनी शिक्षा उन्हें मिली होगी। इतिहास-भूगोल का ज्ञान तो बिलकुल ही न था। फिर भी उनका व्यावहारिक ज्ञान इतने ऊँचे दर्जे का था कि बारीक से बारीक सवालों को सुलझाने में अथवा हजार आदमियों से काम लेने में भी उन्हें कोई कठिनाई नहीं होती थी। धार्मिक शिक्षा नहीं के बराबर थी, पर मंदिरों में जाने से और कथा वगैरा सुनने से जो धर्मज्ञान असंख्य हिन्दुओं को सहज भाव से मिलता रहता है वह उनमें था।

मेरे मन पर यह छाप रही है कि, माता साध्वी स्त्री थीं। वे बहुत श्रद्धालु थीं। बिना पूजा-पाठ के कभी भोजन न करतीं। हमेशा हवेली (वैष्णव-मन्दिर) जातीं। जबसे मैंने होश संभाला तबसे मुझे याद नहीं पड़ता कि उन्होंने कभी चातुर्मास का व्रत तोड़ा हो। वे कठिन से कठिन व्रत शुरू करतीं और उन्हें निर्विघ्न पूरा करतीं। लिये हुए व्रतों को बीमार होने पर भी कभी न छोड़तीं। ऐसे एक समय की मुझे याद है कि जब उन्होंने चान्द्रायण का व्रत लिया था। व्रत के दिनों में वे बीमार पड़ी, पर व्रत

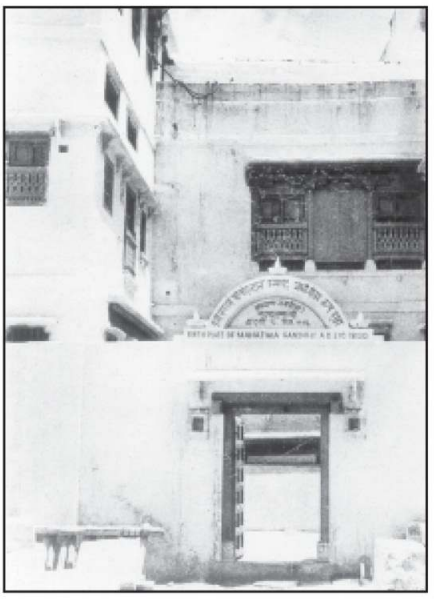

पोरबंदर का मकान

नहीं छोड़ा। चातुर्मास में एक बार खाना तो उनके लिए सामान्य बात थी इतने से संतोष न करके एक चौमासे में उन्होंने तीसरे दिन भोजन करने का व्रत लिया था। लगातार दो-तीन उपवास तो उनके लिए मामूली बात थी। एक चातुर्मास में उन्होंने यह व्रत लिया था कि सूर्यनारायण के दर्शन करके ही भोजन करेंगी। उसे चौमासे में हम बालक बादलों के सामने देखा करते कि कब सूरज के दर्शन हों और कब माँ भोजन करें। यह तो सब जानते हैं कि चौमासे में अकसर सूर्य के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं | मुझे ऐसे दिन याद हैं कि जब हम सूरज को देखते और कहते, "माँ-माँ, सूरज दीखा;" और माँ उतावली होकर आतीं इतने में सूरज छिप जाता और माँ यह कहती हुई लौंट जाती कि "कोई बात नहीं, आज भाग्य में प्लोजन नहीं है" और अपने काम में डूब जातीं।

माता व्यवहार-कुशल थीं। राज-दरबार की सब बातें वे जानती थीं।

इन माता-पिता के घर में दो अक्तूबर, १८६९ को पोरबंदर अथवा सुदामापुरी में भरा जन्म हुआ।

२. बचपन

बचपन मेरा पोरबंदर में ही बीता। याद पड़ता है कि मुझे किसी पाठशाला में भरती किया गया था। मुश्किल से थोड़े पहाड़े मैं सीखा था। मुझे सिर्फ इतना याद है कि मैं उस समय दूसरे लडकों के साथ अपने शिक्षक को गाली देना सीखा था। और कुछ याद नहीं पड़ता।

पोरबंदर से पिताजी राजकोट गये। उस समय मेरी उमर लगभग सात साल की होगी। राजकोट की ग्रामशाला में भरती किया गया। इस शाला के दिन मुझे अच्छी तरह याद हैं। पोरबंदर की तरह यहाँ की पढ़ाई के बारे में भी जानने लायक कोई खास बात नहीं है। ग्रामशाला से उपनगर की शाला में और वहाँ से हाईस्कूल में। यहाँ तक पहुँचने में मेरे बारहवाँ वर्ष बीत गया । मुझे याद नहीं पड़ता कि इस बीच मैंने किसी भी समय शिक्षकों को धोखा दिया हो। न तब तक किसी को मित्र बनाने का स्मरण है। मैं बहुत ही शरमीला लड़का था । पाठशाला में अपने काम से ही काम रखता था। घंटी बजने के समय पहुँचता और पाठशाला के बन्द होते ही घर भागता। 'भागना' शब्द मैं जान-बूझकर लिख रहा हूँ, क्योंकि किसीसे बातें करना मुझे अच्छा न लगता था। साथ ही यह डर भी रहता था कि कोई मेरा मजाक उड़ायेगा तो? हाईस्कूल के पहले ही वर्ष की, परीक्षा के समय की, एक घटना उल्लेखनीय है। शिक्षा-विभाग के इन्स्पेक्टर जाइल्स विद्यालय का निरीक्षण करने आये थे। उन्होंने पहली कक्षा के विद्यार्थियों को अंग्रेजी के पाँच शब्द लिखाये। उनमें एक शब्द 'केटल' था | मैंने उसके हिज्जे गलत लिखे थे | शिक्षकने अपने बूट की नोक मारकर मुझे सावधान किया। लेकिन मैं क्यों सावधान होने लगा ? मुझे यह खयाल ही नहीं हो सका कि शिक्षक मुझे पासवाले लड़के की पट्टी देखकर हिज्जे सुधार लेने को कहते हैं | मैंने यह माना थी कि शिक्षक तो यह देख रहै हैं कि हम एक-दूसरे की पट्टी में देखकर चोरी न करें। सब लड़कों के पाँचों शब्द सही निकले और अकेला मैं बेवकूफ ठहरा ! शिक्षक ने मुझे मेरी बेवकूफी बाद में समझायी; लेकिन मेरे मन पर उनके समझाने का कोई असर न हुआ। मैं दूसरे लड़कों की पट्टी में देखकर चोरी करना कभी सीख न सका।

इतने पर भी शिक्षक के प्रति मेरा विनय कभी कम न हुआ। बड़ों को दोष न देखने का गुण मुझ में स्वभाव से ही था। बाद में इन शिक्षक के दूसरे दोष भी मुझे मालूम हुए थे: फिर भी उनके प्रति मेरा आदर तो बना ही रहा। मैं यह जानता था कि बड़ों की आज्ञा का पालन करना चाहिए। वे जो कहें सो करना; करें उसके काजी, न बनना।

इसी समय के दो और प्रसंग मुझे हमेशा याद रहे हैं। साधारणतः पाठशाला की पुस्तकों को छोड़कर और कुछ पढ़ने का मुझे शौक नहीं था। सबक याद करना चाहिए, उलाहना सहा नहीं जाता, शिक्षक को धोखा देना ठीक नहीं, इसलिए मैं पाठ याद करता था। लेकिन मन अलसा जाता, इससे अकसर सबक कच्चा रह जाता। ऐसी हालत में दूसरी कोई चीज पढ़ने की इच्छा क्यों कर होती ? किन्तु पिताजी की खरीदी हुई एक पुस्तक पर मेरी दृष्टि पड़ी। नाम था 'श्रवण-पितृभक्ति नाटक'। मेरी इच्छा उसे पढ़ने की हुई और मैं उसे बड़े चाव के साथ पढ़ गया उन्हीं दिनों शीशे में चित्र देखानेवाले भी घर-घर आते थे। उनके पास मैंने श्रवण का वह दृश्य भी देखा, जिसमें वह अपने माता-पिता को काँवर में बैठाकर यात्रा पर ले जाता है। दोनों चीजों का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा। मनमें इच्छा होती कि मुझे भी श्रवण के समान बनना चाहिए।

इन्हीं दिनों कोई नाटक-कंपनी आयी थीं और उसका नाटक देखने की इजाजत मुझे मिली थी। हरिश्चन्द्र का आख्यान था। उस नाटक को देखते हुए मैं थकता न था। उसे बार-बार देखने की इच्छा होती थी। लेकिन यों बार-बार जाने कौन देता ? पर अपने मन में मैंने उस नाटक को सैंकडों बार खेला होगा। मुझे हरिश्चन्द्र के सपने आते।' 'हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी सब क्यों नहीं होते ? यह धुन बनी रहती। हरिश्चन्द्र पर जैसी विपत्तियाँ पड़ीं वैसी विपत्तियों को भोगना और सत्य का पालन करना ही वास्तविक सत्य है। मैंने यह मान लिया था कि नाटक में जैसी लिखी है, वैसी ही विपत्तियाँ हरिश्चन्द्र पर पड़ी होंगी। उनका स्मरण करके में खूब रोया हूँ।

हाईस्कूल में मेरी गिनती मन्दबुद्धि विद्यार्थियों में नहीं थी। शिक्षकों का प्रेम मैं हमेशा ही पा सका था। हर साल माता-पिता के नाम स्कूल से विद्यार्थी की पढ़ाई और उसके आचरण

के संबंध में प्रमाणपत्र भेजे जाते थे। उनमें मेरे आचरण या अभ्यास के खराब होने की टीका कभी नहीं हुई। दूसरी कक्षा के बाद मुझे इनाम भी मिले और पाँचवीं तथा छठ्ठी कक्षा में क्रमशः प्रतिमास चार और दस रूपयों की छात्रवृत्ति भी मिली थी। इसमें मेरी होशियारी की अपेक्षा भाग्य का अँश अधिक था। ये छात्रवृत्तियाँ सब विद्यार्थियों के लिए नहीं थीं, बल्कि सोरठवासियों में से सर्वप्रथम आनेवालों के लिए थीं। चालीस-पचास विद्यार्थियों की कक्षा में उस समय सोरठ प्रदेश के विद्यार्थी कितने हो सकते थे ?

मेरा अपना खयाल है कि मुझे अपनी होशियारी का कोई गर्व नहीं था। पुरस्कार या छात्रवृत्ति मिलने पर मुझे आश्चर्य होता था। पर अपने आचरण के विषय में मैं बहुत सजग था। आचरण में दोष आने पर मुझे रुलाई आ ही जाती थी। मेरे हाथों कोई भी ऐसा काम बने, जिससे शिक्षकों को मुझे डाँटना पड़े अथवा शिक्षकों का वैसा खयाल बने, तो वह मेरे लिए असह्य हो जाता था। मुझे याद है कि एक बार मुझे मार खानी पड़ी थी। मार का दुःख नहीं था, पर मैं दण्ड का पात्र माना गया, इसका मुझे बड़ा दुःख रहा। मैं खूब रोया यह प्रसंग पहली या दूसरी कक्षा का है। दूसरा एक प्रसंग सातवीं कक्षा का है। उस समय दोराबजी एदलजी गीमी हेडमास्टर थे। वे विद्यार्थी-प्रेमी थे, क्योंकि वे नियमों का पालन करवाते, व्यवस्थित रीति से काम करते और लेते और अच्छी तरह पढ़ाते थे। उन्होंने उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के लिए कसरत-क्रिकेट अनिवार्य कर दिये थे। मुझे इनसे अरुचि थी। इनके अनिवार्य बनने से पहले मैं कभी कसरत, क्रिकेट या फुटबॉल में गया ही न था। न जाने में मेरा शरमीला स्वभाव ही एकमात्र कारण था। अब मैं देखता हूँ कि वह अरुचि मेरी भूल थी उस समय मेरा यह गलत ख्याल बना हुआ था कि शिक्षा के साथ कसरत का कोई सम्बन्ध नहीं है।

फिर भी मुझे कहना चाहिए कि कसरत में न जाने से मुझे नुकसान नहीं हुआ। उसका कारण यह रहा कि मैंने पुस्तकों में खुली हवा में घूमने जाने की सलाह पढ़ी थी और वह मुझे रुची थी। इसके कारण हाईस्कूल की उच्च कक्षा से ही मुझे हवाखोरी की आदत पड़ गयी थी। वह अन्त तक बनी रही। टहलना भी व्यायाम तो है ही, इससे मेरा शरीर अपेक्षाकृत सुगठित बना।

अरुचि दूसरा कारण था, पिताजी की सेवा करने की तीव्र इच्छा। स्कूल की छुट्टी होते ही मैं सीधा घर पहुँचता और सेवा में लग जाता। जब कसरत अनिवार्य हुई, तो इस सेवा में बाधा पड़ी। मैंने बिनती की कि पिताजी की सेवा के लिए मुझे कसरत से छुट्टी दी जाएँ। पर गीमी साहब छुट्टी क्यों देने लगे ? एक शनिवार के दिन सुबह का स्कूल था। शाम को चार बजे कसरत के लिए जाना था। मेरे पास घड़ी नहीं थी। आसमान बादलों से घिरा था, इसलिए समय का कोई अन्दाज नहीं रहा। मैं बादलों से धोखा खा गया। जब कसरत के लिए पहुँचा, तो सब जा चुके थे। दूसरे दिन गीमी साहब ने हाजिरी देखी, तो मैं गैर-हाजिर पाया गया। मुझसे कारण पूछा गया। मैंने सही-सही कारण बता दिया। उन्होंने उसे सच नहीं माना और मुझ पर एक या दो आने (ठीक रकम का स्मरण नहीं है) का जुर्माना किया।

मैं झूठा ठहरा ! मुझे बहुत दुःख हुआ। कैसे सिद्ध करूँ कि मैं झूठा नहीं हूँ ? कोई उपाय न रहा। मन मसोसकर रह गया। रोया। समझा कि सच बोलनेवाले और सच्चा काम करनेवालो को गाफिल भी नहीं रहना चाहिए। अपने पढ़ाई के समय में इस तरह की मेरी यह पहली और आखिरी गफलत थी। मुझे धुँधली-सी याद है कि आखिर मैं वह जुर्माना माफ करा सका था। मैंने कसरत से तो मुक्ति प्राप्त कर ही ली। पिताजी ने हेडमास्टर को पत्र लिखा कि स्कूल के समय के बाद वे मेरी उपस्थिति का उपयोग अपनी सेवा के लिए करना चाहते हैं। इस कारण मुझे मुक्ति मिल गयी।

व्यायाम के बदले मैंने टहलने का सिलसिला रखा, इसलिए शरीर को व्यायाम न देने की गलती के लिए तो शायद मुझे सजा नहीं भोगनी पड़ी, पर दूसरी एक गलती की सजा में आज तक भोग रहा हूँ। मैं यही जानता कि पढ़ाई में सुन्दर लेखन आवश्यक नहीं है, यह गलत खयाल मुझे कैसे हो गया था। पर ठेठ विलायत जाने तक यह बना रहा। मैंने अनुभव किया कि खराब अक्षर अधूरी शिक्षा की निशानी मानी जानी चाहिए। बाद में मैंने अक्षर सुधारने का प्रयत्न किया, पर पके घडे पर कहीं गला जुड़ता है ? जवानी में मैंने जिसकी उपेक्षा की, उसे मैं आज तक नहीं कर सका।

इस समय के विद्याभ्यास के दूसरे दो संस्मरण उल्लेखनीय हैं। ब्याह के कारण जो एक साल नष्ट हुआ था, उसे बचा लेने की बात दूसरी कक्षा के शिक्षक ने मेरे सामने रखी थी। उन दिनों परिश्रमी विद्यार्थी को इसके लिए अनुमति मिलती थी। इस कारण तीसरी कक्षा में मैं छह महीने रहा और गरमी की छुट्टियों से पहले होनेवाली परीक्षा के बाद मुझे चौथी कक्षा में बैठाया गया। इस कक्षा से थोड़ी पढ़ाई अंग्रेजी माध्यम से होने लगती थी। मेरी समझ में कुछ न आता था। भूमिति भी चौथी कक्षा से शुरू होती थी। मैं उसमें पिछड़ा हुआ था ही, तिस पर मैं उसे बिलकुल समझ नहीं पाता था। भूमिति-शिक्षक अच्छी तरह समझाकर पढ़ाते थे, पर मैं कुछ समझ ही न सकता था। मैं अकसर निराश हो जाता। कभी-कभी यह भी सोचता कि एक साल में दो कक्षाएँ करने का विचार छोड़कर मैं तीसरी कक्षा में लौट जाऊँ। पर ऐसा करने में मेरी लाज जाती, और जिन शिक्षक ने मेरी लगन पर भरोसा करके मुझे चढ़ाने की सिफारिश की थी उनकी भी लाज जाती। इस भय से नीचे जाने का विचार तो छोड़ ही दिया। जब प्रयत्न करते-करते मैं युकिलड़ के तेरहवें प्रमेय तक पहुँचा, तो अचानक मुझे बोध हुआ कि भूमिति तो सरल से सरल विषय है। जिसमें केवल बुद्धि का सीधा और सरल प्रयोग ही करना है, उसमें कठिनाई क्या है ? उसके बाद तो भूमिति मेरे लिए सदा ही एक सरल और सरस विषय बना रहा।

भूमिति की अपेक्षा संस्कृत ने मुझे अधिक परेशान किया। भूमिति में रटने की कोई बात थी ही नहीं, जब कि मेरी दृष्टि से संस्कृत में तो सब रटना ही होता था। यह विषय भी चौथी कक्षा में शुरू हुआ था। छटी कक्षा में मैं हारा। संस्कृत-शिक्षक बहुत कड़े मिजाज के थे। विद्यार्थियों को अधिक सिखाने का लोभ रखते थे। संस्कृत वर्ग और फारसी वर्ग के बीच एक प्रकार की होड़ रहती थी। फारसी सिखानेवाले मौलवी नरम मिजाज के थे। विद्यार्थी आपस में बात करते कि फारसी तो बहुत आसान है और फारसी-शिक्षक बहुत भले हैं। विद्यार्थी जितना काम करते हैं, उतने से वे संतोष कर लेते हैं। मैं भी आसान होने की बात सुनकर ललचाया और एक दिन फारसी के वर्ग में जाकर बैठा। संस्कृत-शिक्षक को दुःख हुआ। उन्होंने मुझे बुलाया और कहा: "यह तो समझ कि तू किनका लड़का है। क्या तू

अपने धर्म की भाषा नहीं सीखेगा ? तुझे जो कठिनाई हो, सो मुझे बता। मैं तो सब विद्यार्थियों को बढ़िया संस्कृत सिखाना चाहता हूँ। आगे चलकर उसमें रसके घूँट पीने को मिलेंगे। तुझे यों हारना नहीं चाहिए। तू फिर से मेरे वर्ग में बैठ।"

मैं शरमाया। शिक्षक के प्रेम की अवगणना न कर सका क्योंकि जितनी संस्कृत उस समय सीखा उतनी भी न सीखा होता, तो आज संस्कृत शास्त्रों में मैं जितना रस ले सकता हूँ उतना न ले पाता। मुझे तो इस बात का पश्चात्ताप होता है कि मैं संस्कृत अधिक न सीख सका। क्योंकि बाद में मैं समझा कि किसी भी हिन्दू बालक को संस्कृत का अच्छा अभ्यास किये बिना रहना ही न चाहिए।

३. बाल-विवाह

यह लिखते हुए मन अकुलाता है कि तेरह साल की उमर में मेरा विवाह हुआ था। आज मेरी आँखों के सामने बारह-तेरह वर्ष के बालक मौजूद हैं। उन्हें देखता हूँ और अपने विवाह का स्मरण करता हूँ, तो मुझे अपने ऊपर दया आती है और इन बालकों को मेरी स्थिति में से बचने के लिए बधाई देने की इच्छा होती है। तेरहवें वर्ष में हुए अपने विवाह के समर्थन में मुझे एक भी नैतिक दलील सुझ नहीं सकती।

सिर्फ तैयारियों से ही पता चला कि व्याह होनेवाले हैं। उस समय अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने, बाजे-बजने, वर-यात्रा के समय घोड़े पर चढ़ने, बढ़िया भोजन मिलने, एक नई बालिका के साथ विनोद करने आदि की अभिलाषा के सिवा दूसरी कोई खास बात रही हो, धीरे-धीरे हम एक-दूसरे को पहचानने लगे, बोलने लगे। हम दोनों बराबरी की उमर के थे पर मैंने तो पति की सत्ता चलाना शुरू कर दिया।

मेरी स्त्री मेरी अनुमति के बिना कहीं जा ही नहीं सकती। पर कस्तूरबाई ऐसी कैद सहन करनेवाली थी ही नहीं। जहाँ इच्छा होती वहाँ मुझे बिना पूछे जरूर जाती। मैं ज्यों-ज्यों दबाव डालता, त्यों-त्यों वह अधिक स्वतंत्रता से काम लेती, और त्यों-त्यों मैं अधिक चिढ़ता। इससे हम बालकों के बीच बोलचाल का बन्द होना एक मामूली चीज बन गयी। कस्तूरबाई ने जो स्वतंत्रता बरती, उसे मैं निर्दोष मानता हूँ। जिस बालिका के मन में पाप नहीं है, वह देव-दर्शन के लिए जाने पर या किसी से मिलने जाने पर दबाव क्यों सहन करे ? अगर मैं उस पर दबाव डालता हूँ, तो वह मुझ पर क्यों न डाले ? – यह तो अब समक्ष में आ रहा है। उस समय तो मुझे अपना पतित्व सिद्ध करना था।

लेकिन पाठक यह न माने कि हमारे इस गृह-जीवन में कहीं भी मिठास नहीं थी। मेरी वक्रता की जड़ प्रेम में थी। मैं अपनी पत्नी को आदर्श बनाना चाहता था। मेरी यह भावना थी कि वह स्वच्छ बने, स्वच्छ रहे, मैं सीखूँ सो सीखे, मैं पढ़ूँ सो पढ़े, और हम दोनों एक-दूसरे में ओतप्रोत रहें।

कस्तूरबाई में यह भावना थी या नहीं, इसका मुझे पता नहीं। वह निरक्षर थी। स्वभाव से सीधी, स्वतंत्र, मेहनती और मेरे साथ तो कम बोलनेवाली थी। उसे अपने अज्ञान का असंतोष न था। अपने बचपन में मैंने कभी उसकी यह इच्छा नहीं जानी कि मेरी तरह वह भी पढ़ सके तो अच्छा हो।

४. दुःखद प्रसंग

मैं कह चुका हूँ कि हाईस्कूल में मेरे थोड़े ही विश्वासपात्र मित्र थे। कहा जा सकता है कि ऐसी मित्रता रखनेवाले दो मित्र अलग-अलग समय में रहे। एक का सम्बन्ध लम्बे समय तक नहीं टिका, यद्यपि मैंने उस मित्र को छोड़ा नहीं था। मैंने दूसरे की सोहबत की, इसलिए पहले ने मुझे छोड़ दिया। दूसरी सोहबत मेरे जीवन का एक दुःखद प्रकरण है। यह सोहबत बहुत वर्षो तक रही। इस सोहबत को निभाने में मेरी दृष्टि सुधारक की थी।

पहली मित्रता मेरे मझले भाई के साथ थी। वे मेरे भाई की कक्षा में थे। मैं देख सका था कि उनमें कई दोष हैं। पर मैंने उन्हें वफादार मान लिया था | मेरे माताजी, मेरे जेठे भाई और मेरी धर्मपत्नी तीनों को यह सोहबत कडवी लगती थी। पत्नी की चेतावनी को तो मैं अभिमानी पति क्यों मानने लगा ? माता की आज्ञाका उल्लंगन मैं करता ही न था बड़े भाई की बात मैं हमेशा सुनता था। पर उन्हें मैंने यह कहकर शान्त किया: "उसके जो दोष आप बताते हैं, उन्हें मैं जानता हूँ। उसके गुण तो आप जानते ही नहीं वह मुझे गलत रास्ते नहीं ले जाएगा, क्योंकि उसके साथ मेरा सम्बन्ध उसे सुधारने के लिए ही है। मुझे यह विश्वास है कि अगर वह सुधर जाएँ, तो बहुत अच्छा आदमी निकलेगा। मैं चाहता हूँ कि आप मेरे विषय में निर्भय रहें।"

मैं नहीं मानता कि मेरी इस बात से उन्हें संतोष हुआ, पर उन्होंने मुझ पर विश्वास किया और मुझे मेरे रास्ते जाने दिया।

जिन दिनों मैं इन मित्र के संपर्क में आया, उन दिनों राजकोट में 'सुधारपंथ' का जोर था। मुझे इन मित्रने बताया कि कई हिन्दू शिक्षक छिपेछिपे माँसाहार और मद्यपान करते हैं। उन्होंने राजकोट

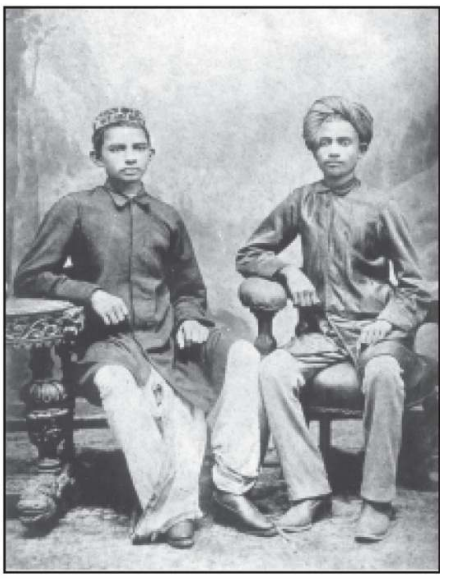

मित्र के साथ

के दूसरे प्रसिद्ध गृहस्थों के नाम भी दिये। मेरे सामने हाईस्कूल में कुछ विद्यार्थियों के नाम भी आये।

मुझे तो आश्चर्य भी हुआ और दुःख भी। कारण पूछने पर यह दलील दी गयी: "हम माँसाहार नहीं करते, इसलिए प्रजा के रूप में हम निर्वीर्य हैं। अंग्रेज हम पर इसीलिए राज्य करते हैं कि वे माँसाहारी हैं। मैं कितना मजबूत हूँ और कितना दौड़ सकता हूँ, सो तो तुम जानते ही हो। इसका कारण भी माँसाहार ही है। माँसाहारी को फोड़े नहीं होते, होने पर झट अच्छे हो जाते हैं। हमारे शिक्षक माँस खाते हैं, इतने प्रसिद्ध व्यक्ति खाते हैं, सो कया बिना समझे खाते हैं ? तुम्हें भी खाना चाहिए। खाकर देखों तो मालूम होगा कि तुममें कितनी ताकात आ जाती है।"

ये सब दलीलें किसी एक दिन नहीं दी गयी थीं। अनेक उदाहरणों से सजाकर इस तरह की दलीलें कई बार दी गयीं। मेरे मझले भाई तो भ्रष्ट हो चुके थे। उन्होंने इन दलीलों की पुष्टि की। अपने भाई की और इन मित्र की तुलना में मैं तो बहुत दुबला था। उनके शरीर अधिक गठीले थे। उनका शरीर-बल मुझसे कहीं ज्यादा था। वे हिम्मतवर थे। इन मित्र के पराक्रम मुझे मुग्ध कर देते थे। वे मनचाहा दौड़ सकते थे। उनकी गति बहुत अच्छी थी। वे खूब लम्बा और ऊँचा कूद सकते थे। मार सहन करने की शक्ति भी उनमें खूब थी। अपनी इस शक्ति का प्रदर्शन भी वे मेरे सामने समय-समय पर करते थे। जो शक्ति अपने में नहीं होती, उसे दूसरे में देखकर मनुष्य को आश्चर्य होता ही है। वैसा मुझे भी हुआ। आश्चर्य में से मोह पैदा हुआ। मुझ में दौड़ने-कूदने की शक्ति नहीं के बराबर थी। मैं सोचा करता कि मैं भी इन मित्र की तरह बलवान बन जाऊँ, तो कितना अच्छा हो।

इसके अलावा मैं बहुत डरपोक था। चोर, भूत, साँप आदि के डर से धिरा रहता था। रात कहीं अकेले जाने की हिंमत नहीं थी। अँधेरे में तो कहीं जाता ही न था। दीये के बिना सोना लगभग असंभव था। कहीं इधर से भूत न आ जाए, उधर से चोर न आ जाए और तीसरी जगह से साँप न निकल आये ! इसलिए बत्ती की ज़रूरत तो रहती ही थी। मेरे ये मित्र मेरी

इन कमजोरियों को जानते थे। मुझसे कहा करते थे कि वे तो जिन्दा साँपों को भी हाथ से पकड़ लेते हैं। चोर से कभी नहीं डरते। भूत को तो मानते ही नहीं।

इन सब बातों का मेरे मन पर पूरा-पूरा असर हुआ। मैं पिघला। मैं यह मानने लगा कि माँसाहार अच्छी चीज है। उससे में बलवान और साहसी बनूँगा। समूचा देश माँसाहार करे, तो अग्रेजों को हराया जा सकता है।

माँसाहार शुरू करने का दिन निश्चित हुआ। गांधी-परिवार वैष्णव सम्प्रदाय का है। माता-पिता बहुत कट्टर वैष्णव माने जाते थे। मैं माता-पिता का परम भक्त था। मैं मानता था कि वे मेरे माँसाहार की बात जानेंगे, तो बिना मौत के उनकी तत्काल मृत्यु हो जाएँगी। लेकिन मुझे तो सुधार करना था। माँसाहार का शौक नहीं था। यह सोचकर कि उसमें स्वाद है, मैं माँसाहार शुरू नहीं कर रहा था। मुझे तो बलवान और साहसी बनना था, दूसरों को वैसा बनने के लिए न्योतना था और फिर अंग्रेजों को हराकर हिन्दुस्तान को स्वतंत्र करना था। 'स्वराज्य' शब्द उस समय तक मैंने सुना नहीं था। सुधार के इस जोश में मैं होश भूल गया।

निश्चित दिन आया। हम नदी की तरफ एकान्त की खोज में चले। दूर जाकर ऐसा कोना खोजा, जहाँ कोई देख न सके, और वहाँ मैंने कभी न देखी हुई वस्तु-माँस... देखी! साथ में भटियारखाने की डबल-रोटी थी। माँस चमड़े जैसा लगता था। खाना असंभव हो गया। मुझे कै होने लगी। खाना छोड़ देना पड़ा।

मेरी वह रात बहुत बुरी बीती। नींद नहीं आई। सपने में ऐसा भास होता था, मानो शरीर के अन्दर बकरा जिन्दा हो और रो रहा हो। मैं चौंक उठता, पछताता और फिर सोचता कि मुझे तो माँसाहार करना ही है, हिम्मत नहीं हारनी है।

मित्र भी हार खानेवाले नहीं थे। उन्होंने अब माँस को अलग-अलग ढंग से पकाने, सजाने और ढँकने का प्रबन्ध किया। नदी किनारे ले जाने के बदले किसी बावरची के साथ बातचीत करके छिपेछिपे एक सरकारी डाक-बंगले पर ले जाने की व्यवस्था की और वहाँ कुर्सी, मेज वगैरा सामान के प्रलोभन में मुझे डाला।

इसका असर हुआ। डबल-रोटी की नफरत कुछ कम पड़ी, बकरे की दया छूटी और माँस का तो कह नहीं सकता, पर माँस वाले पदार्थों में स्वाद आने लगा। इस तरह एक साल बीता होगा और इस बीच पाँच-छह बार माँस खाने को मिला होगा, मेरे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी, इसलिए मैं कुछ दे नहीं सकता था। इस खर्च की व्यवस्था उन मित्र को ही करनी होती थी। उन्होंने कहाँ से, कैसे व्यवस्था की, इसका मुझे आज तक पता नहीं है। उनका इरादा तो मुझे माँस की आदत लगा देने का भ्रष्ट करने का था, इसलिए उनके पास भी कोई अखूट खजाना नहीं था, इसलिए ऐसी दावतें कभी-कभी ही हो सकती थीं।

जब-जब ऐसा भोजन मिलता, तब-तब घर पर तो भोजन हो ही नहीं सकता था। जब माताजी भोजन के लिए बुलातीं, तब आज भूख नहीं है, खाना हजम नहीं हुआ हैं ऐसे बहाने बनाने पड़ते थे। ऐसा कहते समय हर बार मुझे भारी आघात पहुँचता था। यह झूठ, सो भी माँ के सामने और अगर माता-पिता को पता चले कि लड़कें माँसाहारी हो गये हैं, तब तो उन पर बिजली ही टूट पडेगी। ये विचार मेरे दिल को कुरेदते रहते थे।

इस लिए मैंने निश्चय किया: 'माँस खाना आवश्यक है; उसका प्रचार करके हम हिन्दुस्तान को सुधारेंगे; पर माता-पिता को धोखा देना और झूठ बोलना तो माँस खाने से भी बुरा है। इसलिए माता-पिता के जीते-जी माँस नहीं खाना चाहिए। उनकी मृत्यु के बाद, स्वतंत्र होने पर खुले तौर से माँस खाना चाहिए और जब तक वह समय न आवे, तब तक माँसाहार का त्याग करना चाहिए।'

अपना यह निश्चय मैंने मित्र को जता दिया और तबसे माँसाहार जो छूटा, सो सदा के लिए छूट गया।

५. चोरी

माँसाहार के समय के और उससे पहले के कुछ दोषों का वर्णन अभी रह गया है। वे दोष विवाह से पहले के अथवा उसके तुरन्त बाद के हैं।

अपने एक रिश्तेदार के साथ मुझे बीड़ी पीने का शौक लगा। हमारे पास पैसे नहीं थे। हम दोनों में से किसी का यह खयाल तो नहीं था कि बीड़ी पीने में कोई फायदा है, अथवा उसकी गन्ध में आनन्द है। पर हमें लगा कि सिर्फ धुआँ उड़ाने में ही कुछ मजा है। मेरे काकाजी को बीड़ी पीने की आदत थी। उन्हें और दूसरों को धुआ उड़ाते देखकर हमें भी बीड़ी फूँकने की इच्छा हुई। गाँठ में पैसे तो थे नहीं, इसलिए काकाजी पीने के बाद बीड़ी के जो ठूँठ फेंक देते, हमने उन्हें चुराना शुरू किया।

पर बीड़ी के ये ठूँठ हर समय मिल नहीं सकते थे, और उनमें से बहुत धुआँ भी नहीं निकलता था। इसलिए नौकर की जेब में पड़े दो-चार पैसों में से हमने एकाध पैसा चुराने की आदत डाली, और हम बीड़ी खरीदने लगे। पर सवाल यह पैदा हुआ कि उसे संभाल कर रखे कहाँ। हम जानते थे कि बड़ों के देखते तो बीड़ी पी ही नहीं सकते। जैसे-तैसे दो-चार पैसे चुराकर कुछ हफ्ते काम चलाया। इस बीच सुना कि एक प्रकार का पौधा होता है, जिसमें डंढ़ल बीड़ी की तरह जलते हैं और फूँके जा सकते हैं। हमने उन्हें प्राप्त किया और फूँकने लगे।

पर हमें संतोष नहीं हुआ। अपनी पराधीनता हमें अखरने लगी। हमें दुःख इस बात का था कि बड़ों की आज्ञा के बिना हम कुछ भी नहीं कर सकते थे। हम ऊब गये और हमने आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया।

पर आत्महत्या कैसे करें? जहर कौन दे? हमने सुना कि धतूरे के बीज खाने से मृत्यु होती है। हम जंगल में जाकर बीज ले आये। शाम का समय तय किया। केदारनाथजी के मंदिर की दीपमाला में भी घी चढ़ाया, दर्शन किये और एकान्त खोज लिया। पर जहर खाने की हिंमत न हुई। अगर तुरन्त ही मृत्यु न हुई तो क्या होगा ? मरने से लाभ क्या ? क्यों न

पराधीनता ही सह ली जाए ? फिर भी दो-चार बीज खाये। अधिक खाने की हिंमत ही न पड़ी। दोनों मौत से डरे और यह निश्चय किया कि रामजी के मंदिर में जाकर दर्शन करके शान्त हो जाएँ और आत्महत्या की बात भूल जाएँ।

मेरी समझ में आया कि आत्महत्या का विचार करना सरल है, आत्महत्या करना सरल नहीं।

आत्महत्या के इस विचार का परिणाम यह हुआ कि हम दोनों जूठी बीड़ी चुराकर पीने की और नौकर के पैसे चुराकर बीड़ी खरीदने और फूँकने की आदत भूल गये।

फिर बड़ेपन में बीड़ी पीने की कभी इच्छा नहीं हुई। मैंने हमेशा यह माना है कि यह आदत जंगली, गन्दी और हानिकारक है। दुनिया में बीड़ी का इतना जबरदस्त शौक क्यों है, इसे मैं कभी समझ नहीं सका हूँ। रेलगाड़ी के जिस डिब्बे में बहुत बीड़ी पी जाती है, वहाँ बैठना मेरे लिए मुश्किल हो जाता है, और उसके धुएँ से मेरा दम घुटने लगता है।

बीड़ी के ठूँठ चुराने और इसी सिलसिले में नोकर के पैसे चुराने के दोष की तुलना से मुझ से चोरी का दूसरा जो दोष हुआ, उसे मैं अधिक गंभीर मानता हूँ। बीड़ी के दोष के समय मेरी उमर बारह-तेरह साल की रही होगी; शायद इससे कम भी हो। दूसरी चोरी के समय मेरी उमर पन्द्रह साल की रही होगी। यह चोरी मेरे माँसाहारी भाई के सोने के कड़ेके टुकड़े की थी। उन पर मामूली-सा, लगभग पच्चीस रूपये का, कर्ज हो गया था। उसकी अदायगी के बारे में हम दोनों भाई सोच रहे थे। मेरे भाई के हाथ में सोने का ठोस कड़ा था। उसमें से एक तोला सोना काट लेना मुश्किल न था।

कड़ा कटा। कर्ज अदा हुआ। पर मेरे लिए यह बात असह्य हो गयी। मैंने निश्चय किया कि आगे कभी चोरी करूँगा ही नहीं। मुझे लगा कि पिताजी के सम्मुख अपना दोष स्वीकार भी कर लेना चाहिए। पर जीभ न खुली। पिताजी स्वयं मुझे पीटेंगे, इसका डर तो था ही नहीं। मुझे याद नहीं पड़ता कि उन्होंने कभी हममें से किसी भाई को पीटा हो। पर खुद,

दुःखी होंगे, शायद सिर फोड़ लें | मैंने सोचा की यह जोखिम उठाकर भी दोष कबूल कर ही लेना चाहिए, उसके बिना शुद्धि नहीं होगी |

आखिर मैंने तय किया कि चिट्ठी लिखकर दोष स्वीकार किया जाए और क्षमा माँग ली जाए | मैंने चिट्ठी लिखकर हाथोंहाथ दी | चिट्ठी में सारा दोष स्वीकार किया और सजा चाही | आग्रहपूर्वक बिनती कि की वे अपने को दुःख में न डालें, और भविष्य मने फिर ऐसा अपराध न करने की प्रतिज्ञा की |

मैंने काँपते हाथों चिट्ठी पिताजी के हाथ में दी। मैं उनके तख्त के, सामने बैठ गया। उन दिनों वे भगन्दर की, बीमारी से पीड़ित थे, इस कारण बिस्तर पर ही पड़े रहते थे। खटिया के बदले लकड़ी का तख्त काम में लाते थे।

उन्होंने चिट्ठी पढ़ी। आँखों से मोती की बूँदें टपकीं। चिट्ठी भीग गयी। उन्होंने क्षण भर के लिए आँखें मूँदीं, चिट्ठी फाड़ डाली और स्वयं पढ़ने के लिए उठ बैठे थे, सो वापस लेट गये।

मैं भी रोया। पिताजी का दुःख समझ सका। अगर मैं चित्रकार होता, तो वह चित्र आज संपूर्णता से खींच सकता | आज भी वह मेरी आँखों के सामने इतना स्पष्ट है। इस प्रकार की शान्त क्षमा पिताजी के स्वभाव के विरुद्ध थी | मैंने सोचा था कि वे क्रोध करेंगे, कटु वचन कहेंगे, शायद अपना सिर पीट लेंगे। पर उन्होंने इतनी अपार शांति जो धारण की, मेरे विचार में उसका कारण अपराध की सरल स्वीकृति थी। जो मनुष्य अधिकारी के सम्मुख स्वेच्छासे और निष्कपट भाव से अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और फिर कभी वैसा अपराध न करने की प्रतिज्ञा करता है, वह शुद्धतम प्रायश्चित करता है।

६. पिताजी की बीमारी और मृत्यु

पिता करमचंद

उस समय मैं सोलह वर्ष का था। हम ऊपर देख चुके हैं कि पिताजी भगन्दर की बीमारी के कारण बिलकुल शय्यावश थे। उनकी सेवा में अधिकतर माताजी, घर का एक पुराना नौकर और मैं रहते थे। मेरे जिम्मे 'नर्स' का काम था। उनका घाव धोना, उसमें दवा डालना, मरहम लगाने के समय मरहम लगाना, उन्हें दवा पिलाना और जब घर पर दवा तैयार करनी हो तो तैयार करना, यह मेरा खास काम था। रात हमेशा उनके पैर दबाना और इजाजत देने पर अथवा उनके सो जाने पर सोना यह मेरा नियम था। मुझे यह सेवा बहुत प्रिय थी। मुझे स्मरण नहीं है कि इसमें किसी भी दिन चूका होऊँ। ये दिन हाईस्कूल के तो थे ही। इसलिए खाने-पीने के बाद का मेरा समय स्कूल में अथवा पिताजी की सेवा में ही बीतता था। जिस दिन उनकी आज्ञा मिलती और उनकी तबीयत ठीक रहती, उस दिन शाम को टहलने जाता था।

अवसान की घोर रात्रि समीप आई। रात के साढ़े दस या ग्यारह बजे होंगे। मैं पैर दबा रहा था। चाचाजी ने मुझसे कहा: "जा, अब मैं बैठूँगा।" मैं खुश हुआ और सीधा शयन-गृह में पहुँचा। पत्नी तो बेचारी गहरी नींद में थी पाँच-सात मिनिट बिते होंगे, इतने में जिस नौकर की मैं ऊपर चर्चा कर चुका हूँ, उसने आकर किवाड़ खटखटाया। मुझे धक्का-सा लगा। मैं चौंका। नौकर ने कहा, "उठो, बापू बहुत बीमार हैं।" मैं जानता था कि वे बहुत बीमार तो थे ही, इसलिए यहाँ 'बहुत बीमार' का विशेष अर्थ समझ गया। एकदम बीस्तर से कूद पड़ा।

"कह तो सही, बात क्या है ?"

जवाब मिला, "बापू गुजर गये।

मैं बहुत दुःखी हुआ। बात मेरी समझ में आयी कि अगर मैं विषयान्ध न होता, तो इस अंतिम घडी में यह वियोग मुझे नसीब न होता और मैं अन्त समय तक पिताजी के पैर दबाता रहता।

७. धर्म की झाँकी

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मुझे भूत-प्रेत आदि का डर लगता था। रम्भा ने मुझे समझाया कि इसकी दवा रामनाम है। मुझे तो रामनाम से भी अधिक श्रद्धा रम्भा पर थी, इसलिए बहुत समय तक नहीं चला। पर बचपन में जो बीज बोया गया, वह नष्ट नहीं हुआ। आज रामनाम मेरे लिए अमोध शक्ति है। मैं मानता हूँ कि उसके मूल में रम्भाबाई का बोया हुआ बीज है।

पिताजी की बीमारी का थोड़ा समय पोरबंदर में बीता था। वहाँ वे रामजी के मंदिर में रोज रात के समय रामायण सुनते थे। वे रामचन्द्रजी के परम भक्त थे। लाधा महाराज का कण्ठ मीठा था। वे दोहा-चौपाई गाते और अर्थ समझाते थे। उस समय मेरी उमर तेरह साल की रही होगी,पर याद पड़ता है कि उनके पाठ में मुझे खूब रस आता था। यह रामायण-श्रवण रामायण के प्रति मेरे अत्यधिक प्रेम की बुनियाद है। आज मैं तुलसीदास की रामायण को भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ।

राजकोट में मुझे अनायास ही सब सम्प्रदायों के प्रति समान भाव रखने की शिक्षा मिली। मैंने हिन्दू धर्म के प्रत्येक सम्प्रदाय का आदर करना सीखा, क्योंकि माता-पिता वैष्णव मंदिर में, शिवालय में और राम-मंदिर में भी जाते और भाईयों को भी साथ ले जाते या भेजते थे। फिर पिताजी के पास जैन धर्माचार्यों में से भी कोई न कोई हमेशा आते रहते थे। पिताजी उन्हें भिक्षा भी देते थे। वे पिताजी के साथ धर्म और व्यवहार की बातें किया करते थे।

इसके सिवा, पिताजी के मुसलमान और पारसी मित्र भी थे। वे अपने-अपने धर्म की चर्चा करते और पिताजी उनकी बातें सम्मानपूर्वक और अकसर रसपूर्वक सुना करते थे। 'नर्स' होने के कारण ऐसी चर्चा के समय मैं अकसर हाजिर रहता था। इस सारे वातावरण का प्रभाव मुझ पर यह पड़ा कि मुझ में सब धर्मो के लिए समान भाव पैदा हो गया।

एक ईसाई धर्म अपवाद रूप था। उसके प्रति कुछ अरुचि थी। उन दिनों कुछ ईसाई हाईस्कूल के कोने पर खड़े होकर व्याख्यान दिया करते थे। वे हिन्दू देवताओं की और

हिन्दू धर्म को माननेवालों की बुराई करते थे। मुझे यह असह्य मालूम हुआ। उन्हीं दिनों एक प्रसिद्ध हिन्दू के ईसाई बनने की बात सुनी। गाँव में चर्चा थी कि उन्हें ईसाई धर्म की दीक्षा देते समय गोमाँस खिलाया गया और शराब पिलायी गयी। उनकी पोशाक भी बदल दी गयी और ईसाई बनने के बाद वे भाई कोट-पतलून और अंग्रेजी टोपी पहनने लगे। इन बातों से मुझे पीड़ा पहुँची। फिर यह भी सुनने में आया कि जो भाई ईसाई बने थे, उन्होंने अपने पूर्वजों के धर्म की, रीति-रिवाजों की और देश की निंदा करना शुरूकर दिया था। इन सब बातों से मेरे मन में ईसाई धर्म के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गयी।

इस तरह यद्यपि दूसरे धर्मों के प्रति समभाव जागा, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि मुझ में ईश्वर के प्रति आस्था थी।

पर एक चीज ने मन में जड़ जमा ली—यह संसार नीति पर टिका हुआ है। नीतिमात्र का समावेश सत्य में है।

फिर, नीति का एक छप्पय दिल में बस गया। अपकार का बदला अपकार नहीं, उपकार ही हो सकता है, यह एक जीवन-सूत्र ही बन गया। उसने मुझ पर साम्राज्य चलाना शुरू किया। अपकारी का भला चाहना और करना, इसका मैं अनुरागी बन गया। इसके अनगिनत प्रयोग किये। वह चमत्कारी छप्पय यह है।

पाणी आपने पाय, भलुं भोजन तो दीजे;
आवी नमावे शीश, दंडवत कोड़े कीजे
आपत घासे दाम, काम महोरोनुं करीए;
आप उगारे प्राण, ते ताग दुःखमां मरीए
गुण केडे को गुण दश गणो, मन, वाचा, कर्मे करी;
अवगुण केड़े जो गुण करे, ते जगमां जीत्यो सहीं.

८. विलायत की तैयारी

बड़ों की इच्छा थी की पास हो जाने पर मुझे आगे कॉलेज की पढ़ाई करनी चाहिए। कॉलेज बम्बई में भी था और भावनगर में भी। भावनगर का खर्च कम था, इसलिए भावनगर के शामलदास कॉलेज में भरती होने का निश्चय हुआ। पहला सत्र पूरा करके मैं घर आया।

कूटुंब के पुराने मित्र और सलाहकार एक विद्वान, व्यवहार-कुशल ब्राह्मण मावजी दवे थे। पिताजी के स्वर्गवास के बाद भी उन्होंने कुटुम्ब के साथ सम्बन्ध बनाये रखा था। वे छुट्टी के इन दिनों में घर आये। माताजी और बड़े भाई के साथ बातचीत करते हुए उन्होंने मेरी पढ़ाई के बारे में पूछताछ की। जब सुना कि मैं शामलदास कॉलेज में हूँ, तो बोले: "जमाना बदल गया है। तुम भाईयों में से कोई कबा गांधी की गद्दी संभालना चाहे तो बिना पढ़ाई के वह नहीं होगा। वह लड़का अभी पढ़ रहा है, इसलिए गद्दी संभालने का बोझ इससे उठवाना चाहिए। इसे चार-पाँच साल तो अभी बी.ए. होने में लग जाएँगे, और इतना समय देने पर भी इसे ५०-६० रूपये की नौकरी मिलेगी, दीवानगीरी नहीं। और अगर उसके बाद इसे मेरे लड़के की तरह वकील बनायें, तो थोड़े वर्ष और लग जाएँगे। और तब तक तो दीवानगीरी के लिए वकील भी बहुत से तैयार हो चुकेंगे। आपको इसे विलायत भेजना चाहिए। नये आये हुए बारिस्टरों को देखो, वे कैसे ठाठ से रहते हैं। वे चाहें तो उन्हें दीवानगीरी आज मिल सकती है। मेरी तो सलाह है कि आप मोहनदास को इसी साल विलायत भेज दीजिये। विलायल में मेरे केवलराम के कई दोस्त हैं; वह उनके नाम सिफारिशी पत्र दे देगा, तो इसे वहाँ कोई कठिनाई नहीं होगी।"

जोशीजी ने (मावजी दवे को हम इसी नाम से पुकारते थे) मेरी तरफ देखकर मुझसे ऐसे लहजे में पूछा, मानो उनकी सलाह के स्वीकृत होने में उन्हें कोई शंका ही न हो: "क्यों, तुझे विलायत जाना अच्छा लगेगा या यहीं पढ़ते रहना ?" मुझे जो भाता था वही वैद्यने बता दिया। मैं कॉलेज की कठिनाइयों से डर तो गया ही था ! मैंने कहा, "मुझे विलायत भेजें, तो बहुत ही अच्छा है। बड़े भाई सोच में पड़ गये। पैसा कहाँ से आयेगा ? और मेरे जैसे नौजवान को इतनी दूर कैसे भेजा जाए ! माताजी को कुछ सूझ न पड़ा वियोग की बात उन्हें जँची ही

नहीं। उन्होंने सब तरह की पूछताछ शुरू कर दी थी। कोई कहता, नौजवान लोग विलायत जाकर बिगड जाते हैं; कोई कहता, वे माँसाहार करने लगते हैं; कोई कहता, वहाँ शराब के बिना तो चलता ही नहीं। माताजी ने मुझे ये सारी बातें सुनायीं मैंने कहा, "पर तू मेरा विश्वास नहीं करेगी ? मैं तुझे धोखा नहीं दूँगा। शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं इन तीनों चीजों से बचूँगा। अगर ऐसा खतरा होता, तो जोशीजी क्यों जाने देते ?" माताजी बोली, "मुझे तेरा विश्वास है। पर दूर देश में क्या होगा ? मेरी तो अकल काम नहीं करती। मैं बेचरजी स्वामी से पूछूँगी।"

बेचरजी स्वामी मोढ़ बनियों में से बने हुए एक जैन साधु थे। जोशीजी की तरह वे भी हमारे सलाहकार थे उन्होंने मदद की। वे बोले : "मैं इस लड़के से इन तीनों चीजों के व्रत लिवाऊँगा? फिर इसे जाने देने में कोई हानि नहीं होगी।" उन्होंने प्रतिज्ञा लिवायी और मैंने माँस, मदिरा तथा स्त्री-संग से दूर रहने की प्रतिज्ञा की। माताजी ने आज्ञा दी।

हाईस्कूल में सभा हुई। राजकोट का एक युवक विलायत जा रहा है, यह आश्चर्य का विषय बना। मैं जवाब के लिए कुछ लिखकर ले गया था। जवाब देते समय उसे मुश्किल से पढ़ पाया। मुझे इतना याद है कि मेरा सिर घूम रहा था और शरीर काँप रहा था।

माताजी की आज्ञा और आशीर्वाद लेकर और पत्नी की गोद में कुछ महीनों का बालक छोड़कर मैं उमंगों के साथ बम्बई पहुँचा। पहुँच तो गया, पर वहाँ मित्रों ने भाई को बताया कि जून-जुलाई में हिन्द महासागर में तूफान आते हैं और मेरी यह पहली ही समुद्री यात्रा है, इसलिए मुझे दीवाली के बाद यानी नवम्बर में रवाना करना चाहिए।

इस बीच जाति में खलबली मची। जाति की सभा बुलायी गयी। अभी तक कोई मोढ़ बनिया विलायत नहीं गया था। मुझे पंचायत में हाजिर रहने का हुकम मिला। मैं गया। मैं नहीं जानता कि मुझ में अचानक हिंमत कहाँ से आ गयी। हाजिर रहने में मुझे न तो संकोच हुआ, न डर लगा। जाति के सरपंच के साथ दूसरा कुछ रिश्ता भी था। पिताजी के साथ उनका संबंध अच्छा था। उन्होंने मुझसे कहा:

"जाति का खयाल है कि तूने विलायत जाने का जो विचार किया है वह ठीक नहीं है। हमारे धर्म में समुद्र पार करने की मनाही है, तिस पर यह भी सुना जाता है कि वहाँ धर्म की रक्षा नहीं हो पाती। वहाँ साहब लोगों के साथ खाना-पीना पड़ता है।"

मैंने जवाब दिया, "मुझे तो लगता है कि विलायत जाने में लेशमात्र भी अधर्म नहीं है।

मुझे तो वहाँ जाकर विद्याध्ययन ही करना है। फिर जिन बातों का आपको डर है, उनसे दूर रहने की प्रतिज्ञा मैंने अपनी माताजी के सम्मुख ली है, इसलिए मैं उनसे दूर रह सकूँगा।"

सरपंच बोले: "पर हम तुझसे कहते हैं कि वहाँ धर्म की रक्षा हो ही नहीं सकती। तू जानता है कि तेरे पिताजी के साथ मेरा कैसा सम्बन्ध था। तुझे मेरी बात माननी चाहिए।"

मैंने जवाब में कहा: "आपके साथ के सम्बन्ध को मैं जानता हूँ। आप पिता के समान हैं। पर इस बारे में मैं लाचार हूँ। विलायत जाने का अपना निश्चय मैं बदल नहीं सकता। जो विद्वान ब्राह्मण मेरे पिताजी के मित्र और सलाहकार हैं, वे मानते हैं कि मेरे विलायत जाने में कोई दोष नहीं है। मुझे अपनी माताजी और अपने भाई की अनुमति भी मिल चुकी है।"

"पर तू जाति का हुकम नहीं मानेगा ?"

"मैं लाचार हूँ। मेरा खयाल है कि इसमें जाति को दखल नहीं देना चाहिए।"

इस जवाब से सरपंच गुस्सा हुए। मुझे दो-चार बातें सुनायीं। मैं स्वस्थ बैठा रहा। सरपंच ने आदेश दिया: "यह लड़का आज से जातिच्युत माना जाएगा। जो कोई इसकी मदद करेगा अथवा इसे बिदा करने जाएगा, पंच उससे जवाब तलब करेंगे और उससे सवा रुपया दण्ड का लिया जाएँगा।"

मुझ पर इस निश्चय का कोई असर नहीं हुआ। मैंने सरपंच से बिदा ली। अब सोचना यह था कि इस निश्चय का मेरे भाई पर क्या असर होगा। कहीं वे डर गये तो ? सौभाग्य से वे दृढ़ रहे और मुझे लिख भेजा कि जाति के निश्चय के बावजूद वे मुझे विलायत जाने से नहीं रोकेंगे।

मित्रों ने मेरे लिए जगह भी त्र्यम्बकराय मजमुदार (जूनागढ़ के वकील का नाम) की कोठरी में ही रखी थी। उनसे मेरे विषय में कह भी दिया था। वे तो प्रौढ़ उमर के अनुभवी सज्जन थे। मैं दुनिया के अनुभव से शून्य अठारह साल का नौजवान था। मजमुदार ने मित्रों से कहा, "आप इसकी फिक्र न करें।"

सितम्बर महीने की ४ तारीख को मैंने बम्बई का बन्दरगाह छोडा।

९. आखिर विलायत पहुँचा

अंग्रेजी में बातें करने की मुझे आदत ही न थी। मजमुदार को छोड़कर दूसरे सब मुसाफिर अंग्रेज थे। मैं उनके साथ बोल न पाता था। वे मुझसे बोलने का प्रयत्न करते, तो मैं समझ न पाता; और समझ लेता, तो जवाब क्या देना सो सूझता न था। बोलने से पहले हरएक वाक्य को जमाना पड़ता था। कांटे-चम्मचसे खाना आता न था, और किस पदार्थ में माँस नहीं है, यह पूछने की हिंमत नहीं होती थी। इसलिए मैं खाने की मेज पर तो कभी गया ही नहीं। अपनी कोटरी में ही खाता था। अपने साथ खास करके जो मिठाई वगैरा लाया था, उन्हीं से मैंने काम चलाया। मजमुदार को तो कोई संकोच नहीं था। वे सबके साथ घुलमिल गये थे। डेक पर भी आजादी से जाते थे। मैं सारे दिन कोठरी में बैठा रहता था। कभी-कदास, जब डेक पर थोड़े लोग होते, तो कुछ देर वहाँ जाकर बैठ लेता था। मजमुदार मुझे समझाते कि सबके साथ घुलो-मिलो, आजादी से बातचीत करो; वे मुझसे यह भी कहते कि वकील की जीभ खूब चलनी चाहिए। वकील के नाते वे अपने अनुभव सुनाते और कहते कि अंग्रेजी हमारी भाषा नहीं है, उसमें गलतियाँ तो होंगी ही, फिर भी खुलकर बोलते रहना चाहिए। पर मैं अपनी भीरुता, छोड़ न पाता था।

मुझ पर दया करने एक भले अंग्रेज ने मुझसे बातचीत शुरू की। वे उमर में बड़े थे। मैं कया खाता हूँ, कौन हूँ, कहाँ जा रहा हूँ, किसी से बातचीत क्यों नहीं करता आदि प्रश्न वे पूछते रहते। उन्होंने मुझे खाने की मेज पर जाने की सलाह दी। माँस न खाने के मेरे आग्रह की बात सुनकर वे हँसे और मुझ पर तरस खाकर बोले, "यहाँ तो (पोर्टसईद पहुँचने से पहले तक) ठीक है, पर बिस्के की खाड़ी में पहुँचने पर तुम अपने विचार बदल लोगे। इंग्लेन्ड में तो इतनी ठंड पडती है कि माँस खाये बिना चलता ही नहीं।

मैंने कहा, "मैंने सुना है कि वहाँ लोग माँसाहार के बिना रह सकते हैं।"

वे बोले, "इसे गलत समझो। अपने परिचितों में मैं ऐसे किसी आदमी को नहीं जानता, जो माँस न खाता हो। सुनो, मैं शराब पीता हूँ, पर तुम्हें पीने के लिए नहीं कहता। लेकिन मैं समझता हूँ कि तुम्हें माँस तो खाना ही चाहिए।"

मैंने कहा, "इस सलाह के लिए मैं आपका आभार मानता हूँ, पर माँस न खाने के लिए मैं अपनी माताजी से वचन-बद्ध हूँ। इस कारण मैं माँस नहीं खा सकता। अगर उसके बिना काम ही न चला, तो मैं वापस हिन्दुस्तान चला जाऊँगा, पर माँस तो कभी न खाऊँगा।"

बिस्के की खाड़ी आयी। वहाँ भी मुझे न तो माँस की जरूरत मालूम हुई और न मदिरा की। दुःख-सुख सहते हुए यात्रा समाप्त करके हम साउदेम्प्टन बन्दरगाह पर पहुँचे। मुझे याद है कि उस दिन शनिवार था। जहाज पर मैं काली पोशाक पहनता था। मित्रों ने मेरे लिए सफेद फलालैन के कोट-पतलून भी बनवा दिये थे। उन्हें मैंने विलायत में उतरते समय पहनने का विचार कर रखा था, यह समझकर कि सफेद कपड़े अधिक अच्छे लगेंगे ! मैं फलालैन का सूट पहनकर उतरा। सितम्बर के आखिरी दिन थे मैंने वहाँ इस पोशाक में एक अपने को ही देखा। मेरी पेटियाँ और उनकी चाविर्यां तो ग्रिन्डले कम्पनी के एजेण्ट ले गये थे। सबकी तरह मुझे भी करना चाहिए, यह समझकर मैंने तो अपनी चाबियाँ भी दे दी थीं।

जहाज में किसी ने सलाह दी थी कि विक्टोरिया होटल में ठहरना चाहिए। इस कारण मजमुदार और मैं इस होटल में पहुँचे। मैं तो अपनी सफेद पोशाक की शरम से ही गड़ा जा रहा था। तिस पर होटल में पहुँचने पर पता चला कि अगले दिन रविवार होने से ग्रिन्डले के यहाँ से सामान सोमवार तक नहीं आयेगा। इससे मैं परेशान हुआ। सात-आठ बजे डॉक्टर मेहता आये। उन्होंने प्रेमभरा विनोद किया। मैंने अनजाने रेशमी रोओंवाली उनकी टोपी देखने के खयाल से उठायी और उस पर उलटा हाथ फेरा। इससे टोपी क रोएँ खड़े हो गये। डॉक्टर मेहता ने देखा, मुझे तुरन्त ही रोका। पर अपराध तो हो ही चुका था। उनके रोकने का नजीता तो यही निकल सकता था कि दुबारा वैसा अपराध न हो। समझिये कि यहीं से यूरोप के रीति-रिवाजों के सम्बन्ध में मेरी शिक्षा का श्री गणेश हुआ। डॉक्टर मेहता हँसते-हँसते बहुत-सी बाते समझाते जाते थे। किसी की चीज छूनी नहीं चाहिए; किसीसे जान-पहचान होने पर जो प्रश्न हिन्दुस्तान में यों ही पूछे जा सकते हैं, वे यहाँ नहीं पूछे जा सकते; बातें करते समय ऊँची आवाज से नहीं बोल सकते; हिन्दुस्तान में अंग्रेजों से बात

करते समय 'सर' कहने का जो रिवाज है, वह यहाँ अनावश्यक है; 'सर' तो नौकर अपने मालिक से अथवा अपने बड़े अफसर से कहता है। फिर उन्होंने होटल में रहने के खर्च की भी चर्चा की और सुझाया कि किसी निजी कुटुम्ब में रहने की जरूरत पड़ेगी। इस विषय में अधिक विचार सोमवार पर छोड़ा गया।

होटल में तो हम दोनों को यही लगा कि यहाँ कहाँ आ फँसे। होटल महँगा भी था। माल्टा से एक सिंधी यात्री जहाज पर सवार हुए थे। मजमुदार उनसे अच्छे घुलमिल गये थे। ये सिंधी यात्री लंदन के अच्छे जानकार थे। उन्होंने हमारे लिए दो कमरे किराये पर लेने की जिम्मेदारी उठायी। हम सहमत हुए और सोमवार को जैसे ही सामान मिला, बिल चुकाकर उक्त सिंधी सज्जन द्वारा ठीक किये कमरों में हमने प्रवेश किया। मुझे याद है कि मेरे हिस्से का होटल का बिल लगभग तीन पौंड का हुआ था। मैं तो उसे देखकर चकित ही रह गया तीन पौंड देने पर भी भूखा रहा। होटल की कोई चीज मुझे रुचती नहीं थी। एक चीज ली और वह नहीं रुची; दूसरी ली; पर दाम तो दोनों के ही चुकाने चाहिए। यह कहना ठीक होगा कि अभी तो मेरा काम बम्बई से लाये हुए पाथेय से ही चल रहा था।

इसि कमरे में भी मैं बहुत परेशान रहा। देश की याद खूब आती थी। माता का प्रेम मूर्तिमान होता था। रात पड़ती और मैं रोना शुरू करता। घर की अनेक स्मृतियों की चढ़ाई के कारण नींद तो आ ही कैसे सकती थी ? मैं स्वयं नहीं जानता था कि किस उपाय से मुझे आश्वासन मिलेगा। यहाँ के लोग विचित्र, रहन-सहन विचित्र, घर भी विचित्र, घरों में रहने का ढ़ंग भी विचित्र ! क्या कहने और कया करने से यहाँ शिष्टाचार को नियमों का उल्लंघन होगा, इसकी जानकारी भी मुझे बहुत कम थी। तिस पर खाने-पीने का परहेज और खाने योग्य आहार सूखा तथा नीरस लगता था। इस कारण मेरी दशा सरौत के बीच सुपारी जैसी हो गयी। विलायत में रहना मुझे अच्छा नहीं लगता था और देश को लौटा नहीं जा सकता था। विलायत पहुँच जाने पर तो तीन साल वहाँ पूरे करने का ही मेरा आग्रह था।

भाग-२ : लंडन में छात्र के रूप में

१०. मेरी पसन्द

लंदन में छात्र

डॉक्टर मेहता सोमवार को मुझसे मिलने विक्टोरिया होटल पहुँचे। वहाँ उन्हें हमारा नया पता मिला, इससे वे नयी जगह आकर मिले। डॉक्टर मेहता ने हमारे कमरे वगैरा देखे और सिर हिलाया: "यह जगह काम की नहीं। इस देश में आकर पढ़ने की अपेक्षा यहाँ के जीवन और रीति-रिवाज का अनुभव प्राप्त करना ही अधिक महत्त्व का है। इसके लिए किसी परिवार में रहना जरूरी है। पर अभी तो मैंने सोचा है कि तुम्हें कूछ तालीम मिल सके, इसके लिए मेरे एक मित्र के घर रहा। मैं तुम्हें वहाँ ले जाऊँगा।" मैंने आभारपूर्वक उनका सुझाव मान लिया। मैं मित्र के घर पहुँचा। उनके स्वागत-सत्कार में कोई कमी नहीं थी। उन्होंने मुझे अपने सगे भाई की तरह रखा, अंग्रेजी रीति-रिवाज सिखाये; यह कह सकता हूँ कि अंग्रेजी में थोड़ी बातचीत करने की आदत उन्होंने डलवाई। मेरे भोजन का प्रश्न बहुत विकट हो गया। बिना नमक और मसालोंवाली साग-सब्जी रुचती नहीं थी। घर की मालकिन मेरे लिए कुछ बनावे तो क्या बनावे? सवेरे तो ओटमील की लपसी बनती। उससे पेट कुछ भर जाता। पर दोपहर और शामको मैं हमेशा भूखा रहता। मित्र मुझे रोज माँस खाने के लिए समझाते। मैं प्रतिज्ञा की आड़ लेकर चुप हो जाता। दोपहर को सिर्फ रोटी, पत्तोवाली एक भाजी और मुरब्बे पर गुजर करता था। यही खुराक शाम के लिए भी थी। मैं देखता कि रोटी के तो दो-तीन टुकडे ही लेने की रीत है। इससे अधिक माँगते शरम लगती थी। मुझे डटकर खाने की आदत थी। भूख तेज थी और खूब खुराक चाहती थी। दोपहर या शाम को दूध नहीं मिलता था। मेरी यह हालत देखकर एक दिन मित्र चिढ़ गये और बोले: "अगर तुम मेरे सगे भाई होते, तो मैं तुम्हें निश्चय ही वापस भेज देता। यहाँ की हालत जाने बिना निरक्षर माता के सामने की गयी प्रतिज्ञा का मूल्य ही क्या ? मैं तुमसे कहता हूँ

कि कानून इसे प्रतिज्ञा नहीं मानेगा। ऐसी प्रतिज्ञा से चिपटे रहना और ऐसे अंधविश्वास में फँसे रहकर तुम इस देश से अपने देश में कुछ भी न ले जा सकोगे। तुम तो कहते हो कि तुमने माँस खाया है। तुम्हें वह अच्छा भी लगा है। जहाँ खाने की ज़रूरत नहीं थी वहाँ खाया, और जहाँ खाने की खास जरूरत है वहाँ छोड़ा। यह कैसा आश्चर्य है !"

मैं टस से मस नहीं हुआ।

ऐसी बहस रोज हुआ करती। मेरे पास छत्तीस रोगों को मिटानेवाला एक नन्ना ही था। मित्र मुझे जितना समझाते, मेरी दृढ़ता उतनी ही बढ़ती जाती। मैं रोज भगवान से रक्षा की याचना करता और मुझे रक्षा मिलती। मैं नहीं जानता था कि ईश्वर कौन है। पर रम्भा की दी हुई श्रद्धा अपना काम कर रही थी।

अभी पढ़ाई शुरू नहीं हुई थी। हिन्दुस्तान में मैंने समाचारपत्र कभी पढ़े नहीं थे। पर बराबर पढ़ते रहने के अभ्यास से उन्हें पढ़ने का शौक मैं पैदा कर सका था। पर शुरू-शुरू में तो इसमें मुश्किल से एक घंटा खर्च होता होगा। मैंने घूमना शुरू किया। मुझे निरामिष अर्थात् अनाहार देने वाले भोजनगृह की खोज करनी थी। इस तरह भटकता हुआ एक दिन मैं फैरिंग्डन स्ट्रीट पहुँचा, और वहाँ "वेजिटेरियन रेस्टरों" (अन्नाहारी भोजनालय) का नाम पढ़ा। बालक को मनचाही चीज मिलने से होता है, मुझे वह आनन्द हुआ। हर्ष-विभोर होकर अन्दर घुसने से पहले मैंने दरवाजा के पास की शीशेवाली खिड़की में बिक्री की पुस्तकें देखीं। उनमें मुझे सोल्ट की "अन्नाहार की हिमायत' नामक पुस्तक दीखी। एक शिलिंग में मैंने वह खरीद ली और फिर भोजन करने बैठा। विलायत आने के बाद यहाँ पहली बार भरपेट भोजन मिला। ईश्वर ने मेरी भूख मिटायी।

सॉल्ट की पुस्तक पढ़ी। मुझ पर उसकी अच्छी छाप पड़ी। इस पुस्तक को पढ़ने के दिन से मैं स्वेच्छापूर्वक, अर्थात् विचार-पूर्वक, अन्नाहार में विश्वास करने लगा। माता के निकट की गयी प्रतिज्ञा अब मुझे विशेष आनन्द देने लगी। मैं यह मानता था कि सब माँसाहारी बने तो अच्छा हो, उसी तरह अब स्वयं अन्नाहारी रहकर दूसरों को वैसा बनाने का लोभ मुझमें जागा।

११. सभ्य पोशाक में

इस बीच मेरे उन मित्र को तो मेरी चिन्ता बनी ही रही। उन्होंने मुझे नाटक दिखाने के लिए न्योता। वहाँ जाने से पहले मुझे उनके साथ होर्बन भोजन-गृह में भोजन करना था। मेरी दृष्टि में यह गृह एक महल था। सैंकडों के बीच हम दो मित्र एक मेज के सामने बैठे। मित्रने पहली 'प्लेट' मँगाई। वह 'सूप' की थी। मैं परेशान हुआ। मित्र से क्या पूछता? मैंने तो परोसनेवाले को अपने पास बुलाया। मित्र समझ गये। चिढ़कर मुझसे पूछा: "क्या है ?" मैंने धीरे से संकोचपूर्वक कहा: "मैं जानना चाहता हूँ कि इसमें माँस है या नहीं ?" "ऐसे गृह में यह जंगलीपन नहीं चल सकता। अगर तुम्हें अब भी यही किच-किच करनी हो तो तुम बाहर जाकर किसी छोटे से भोजन-गृह में खा लो और बाहर ही मेरी राह देखो।" मैं इस प्रस्ताव से खुश होकर उठा और दूसरे भोजनालय की खोज में निकला। पास ही एक अन्नाहारवाला भोजन-गृह था। पर वह तो बन्द हो चुका था? मैं भूखा रहा। हम नाटक देखने गये। मित्र ने उक्त घटना के बारे में एक भी शब्द मुँह से न निकाला। मेरे पास तो कहने को था ही क्या?

लेकिन यह हमारे बीच का अंतिम मित्र-युद्ध था। न हमारा सम्बन्ध टूटा, न उसमें कटुता आयी। उनके सारे प्रयत्नों के मूल में रहे हुए प्रेम को मैं पहचान सका था। इस कारण विचार और आचार की भिन्नता के रहते हुए भी उनके प्रति मेरा आदर बढ़ गया।

पर मैंने सोचा कि मुझे उनका डर दूर करना चाहिए। मैंने निश्चय किया कि मैं जंगली नहीं रहूँगा। सभ्य के लक्षण ग्रहण करूँगा और दूसरे प्रकार से समाज में समरस होने योग्य बनकर अन्नाहार की अपनी विचित्रता को छिपा लूँगा। मैंने 'सभ्यता' सीखने के लिए अपनी सामर्थ्य से परेका और छिछला रास्ता पकड़ा।

विलायती होने पर भी बम्बई के कटे-सिले कपड़े अच्छे अंग्रेज समाज में शोभा नहीं देगे, इस विचार से मैंने 'आर्मी और नेवी' स्टोर में कपड़े सिलवाये। उन्नीस शिलिंग की (उस जमाने के लिहाज से तो यह कीमत बहुत ही कही जायेगी) 'चिमनी' टोपी सिर पर पहनी।

इतने से संतोष न हुआ तो बोण्ड स्ट्रीट में, जहाँ शौकीन लोगो के कपड़े सिलते थे, दस पौण्ड पर बत्ती रखकर शाम की पोशाक सिलवायी। भोले और बादशाही दिलवाले बड़े भाई से मैंने दोनों जेबों में लटकाने लायक सोने की एक बढ़िया चेन मँगवायी और वह मिल भी गयी। बँधी-बँधायी टाई पहनना शिष्टाचार में शुभार न था, इसलिए टाई बाँधने की कला हस्तगत की। देश में आईना हजामत के दिन ही देखने को मिलता था, पर यहाँ तो बड़े आईने के सामने खड़े रहकर ठीक से टाई बाँधने में और बालों में पट्टी डालकर सीधी माँग निकालने में रोज लगभग दस मिनिट तो बरबाद होते ही थे। बाल मुलायम नहीं थे, इसलिए उन्हें अच्छी तरह मुड़े हुए रखने के लिए ब्रश (झाडु ही समझिये !) के साथ रोज लड़ाई चलती थी। और टोपी पहनते तथा निकालते समय हाथ तो मानो माँग को सहेजने के लिए सिर पर पहुँच ही जाता था और बीच-बीच में, समाज में बैठे-बैठे, माँग पर हाथ फिराकर बालों को व्यवस्थित रखने की एक और सभ्य क्रिया बराबर चलती ही रहती थी।

पर इतनी टीमटाम ही काफी न थी। मैंने सभ्यता के दूसरे कई बाहरी गुण भी जान लिए थे और मैं उन्हें सीखना चाहता था। सभ्य पुरुष को नाचना जानना चाहिए। उसे फ्रेंच अच्छी तरह जान लेनी चाहिए; फ्रेंच इंग्लेण्ड के पड़ोसी फ्रांस की भाषा थी, और सारे यूरोप की राष्ट्रभाषा भी थी। और, मुझे यूरोप में घूमने की इच्छा थी। मैंने नृत्य सीखने का निश्चय किया। एक कक्षा में भरती हुआ। एक सत्र के करीब तीन पोण्ड जमा किये। कोई तीन हफ्तों में करीब छह सबक सीखे होंगे। पैर ठीक से तालबद्ध पड़ते न थे। पियानो बजता था, पर वह क्या कह रहा है, कुछ समझ में न आता था। तो अब क्या किया जाए? अब तो बाबाजी की बिल्लीवाला किस्सा हुआ। चूहों को भगाने के लिए बिल्ली, बिल्ली के लिए गाय, यों बाबाजी का परिवार बढ़ा; उसी तरह मेरे लोभ का परिवार भी बढ़ा। वायोलिन बजाना सीख लूँ, तो सुर और ताल का ख्याल हो जाए। तीन पौण्ड वायोलिन खरीदने में गँवाये और कुछ उसकी शिक्षा के लिए भी दिये। भाषण करना सीखने के लिए एक तीसरे शिक्षक का घर खोजा। उन्हें भी एक गिन्नी तो भेंट की ही। बेल की "स्टेण्डेर्ड एलोकयुशनिस्ट' पुस्तक खरीदी। पिटका एक भाषण शुरू किया।

इन बेल साहब ने मेरे कान में घंटी (बेल) बजायी। मैं जागा।

मुझे कौन इंग्लैण्ड में जीवन बिताना है ? लच्छेदार भाषण करना सीखकर मैं क्या करूँगा ? नाच-नाचकर मैं सभ्य कैसे बनूँगा ? वायोलिन तो देश में भी सीखा जा सकता है | मैं तो विद्यार्थी हूँ | मुझे विद्या-धन बढ़ाना चाहिए | मुझे अपने पेशे से सम्बन्ध रखनेवाली तैयारी करनी चाहिए। मैं अपने सदाचार से सभ्य समझा जाऊँ तो ठीक है, नहीं तो मुझे यह लोभ छोड़ना चाहिए।

इन विचारों की धुन में मैंने उपर्युक्त आशय के उद्गारोंवाला पत्र भाषण-शिक्षण को भेज दिया। उनसे मैंने दो या तीन पाठ पढ़े थे। नृत्य-शिक्षिका को भी ऐसा ही पत्र लिखा। वायोलिन शिक्षिका के घर वायोलिन लेकर पहुँचा। उन्हें जिस दाम भी वह बिके, बेच डालने की इजाजत दे दी। उनके साथ कुछ मित्रता का-सा सम्बन्ध हो गया था। इस कारण मैंने उनसे अपने मोह की चर्चा की। नाच आदि के जंजाल में से निकल जाने की मेरी बात उन्होंने पसंद की।

सभ्य बनने की मेरी यह सनक लगभग तीन महीने तक चली होगी। पोशाक की टीमटाम तो बरसों चली। पर अब मैं विद्यार्थी बना।

१२. फेरफार

कोई यह न माने कि नाच आदि के मेरे प्रयोग उस समय की मेरी स्वच्छन्दता के सूचक हैं। पाठकों ने देखा होगा कि उनमें कुछ समझदारी थी। मोह के इस समय में भी मैं एक हद तक सावधान था। पाई-पाई का हिसाब रखता था। खर्च का अंदाज रखता था।

अपनी रहन-सहन पर मेरा कुछ अंकुश था, इस कारण मैं देख सका कि मुझे कितना खर्च करना चाहिए। अब तक मैं कुटुम्बों में रहता था, उसके बदले अपना ही कमरा लेकर रहने का मैंने निश्चय किया, और यह भी तय किया कि काम के अनुसार और अनुभव प्राप्त करने के लिए अलग-अलग मुहल्लों में घर बदलता रहूँगा। घर मैंने ऐसी जगह पसंद किये कि जहाँ से काम की जगह पर आधे घंटे में पैदल पहुँचा जा सके और गाड़ी-भाडा बचे। इससे पहले जहाँ जाना होता वहाँ का गाडी-भाड़ा हमेशा चुकाना पड़ता और घूमने के लिए अलग से समय निकालना पड़ता था। अब काम पर जाते हुए ही घुमने की व्यवस्था जम गयी, और इस व्यवस्था के कारण मैं रोज आठ-दस मिल तक आसानी से घूम लेता था। खासकर इस एक आदत के कारण मैं विलायत में शायद ही कभी बीमार पड़ा होऊँगा। मेरा शरीर काफी कस गया।

कुटुंब में रहना छोड़कर मैंने दो कमरे किराये पर लिये। एक सोने के लिए और दूसरा बैठक के रूप में। यह फेरफार की दूसरी मंजिल कही जा सकती है। तीसरा फेरफार अभी होना शेष था।

इस तरह आधा खर्च बचा। लेकिन समय का क्या हो ? मैं जानता था कि बारिस्टरी की परीक्षा के लिए बहुत पढ़ना जरूरी नहीं है; इस लिए मुझे बेफिकरी थी। पर मेरी कच्ची अंग्रेजी मुझे दुःख देती थी। लेली साहब के शब्द 'तुम बी.ए. हो जाओ, फिर आना'—मुझे चुभते थे। मैंने सोचा मुझे बारिस्टर बनने के अलावा कुछ और भी पढ़ना चाहिए। ओक्सफर्ड केम्ब्रिज की पढ़ाई का पता लगाया। कई मित्रों से मिला। मैंने देखा कि वहाँ जाने से खर्च बहुत बढ़ जाएँगा और पढ़ाई लम्बी चलेगी। मैं तीन साल से अधिक रह नहीं सकता था।

किसी मित्र ने कहा, "अगर तुम्हें कोई कठिन परीक्षा ही देनी हो, तो तुम लन्दन की मेट्रिक्युलेशन पास कर लो। उसमें मेहनत काफी करनी पड़ेगी और साधारण ज्ञान बढ़ेगा। खर्च बिलकुल नहीं बढ़ेगा।" मुझे यह सुझाव अच्छा लगा। पर परीक्षा के विषय देखकर मैं चौंका। लेटिन और दूसरी एक भाषा अनिवार्य थी। लेटिन कैसे सीखी जाए ? पर मित्र ने सुझाया: "वकील के लिए लेटिन बहुत उपयोगी है। लेटिन जाननेवाले के लिए कानूनी किताबें समझना आसान हो जाता है, और 'रोमन लॉ' की परीक्षा में एक प्रश्नपत्र तो केवल लेटिन भाषा में ही होता है। इसके सिवाय, लेटिन जानने से अंग्रेजी भाषा पर प्रभुत्व बढ़ता है।" इन सब दलीलों का मुझ पर असर हुआ। मैंने सोचा, मुश्केल हो चाहे न हो, पर लेटिन तो सीख ही लेनी है। फ्रेंच की शुरू की हुई पढ़ाई को पूरा करना है। इसलिए निश्चय किया कि दूसरी भाषा फेंच हो। मैट्रिक्युलेशन का एक प्राइवेट वर्ग चलता था। उसमें भरती हो गया। हर छठे महिने परीक्षा होती थी। मेरे पास मुश्किल से पाँच महीने का समय था। यह काम मेरे बूते के बाहर था। परिणाम यह हुआ कि सभ्य बनने की जगह मैं अत्यन्त उद्यमी विद्यार्थी बन गया। समय-पत्रक बनाया। एक-एक मिनट का उपयोग किया। पर मेरी बुद्धि या स्मरण-शक्ति ऐसी नहीं थी कि दूसरे विषयों के अतिरिक्त लेटिन और फ्रेंच की तैयारी कर सकूँ। परीक्षा में बैठा। लेटिन में फेल हो गया। दुःख तो हुआ, पर हिम्मत नहीं हारा। लेटिन में रुचि पैदा हो गयी थी। मैंने सोचा कि दूसरी बार परीक्षा में बैठने से फ्रेंच अधिक अच्छी हो जाएँगी और विज्ञान में नया विषय ले लूँगा। प्रयोगों के अभाव में रसायन शास्त्र मुझे रुचता ही न था। यद्यपि अब देखता हूँ कि उसमें खूब रस आना चाहिए था। देश में तो यह विषय सीखा ही था, इसलिए लन्दन की मैट्रिक के लिए भी पहली बार इसी को पसंद किया था। इस बार प्रकाश और उष्णता (Light और Heat) का विषय लिया। यह विषय आसान माना जाता था। मुझे भी आसान प्रतीत हुआ।

पुनः परीक्षा देने की तैयारी के साथ ही रहन-सहन में अधिक सादगी लाने का प्रयत्न शुरू किया। मैंने अनुभव किया कि अभी मेरे कुटुम्ब की गरीबी के अनुरूप मेरा जीवन सादा नहीं बना है। भाई की तंगी के और उनकी उदारता के विचारों ने मुझे व्याकुल बना दिया।

जो लोग हर महीने १५ पौण्ड या ८ पौण्ड खर्च करते थे, उन्हें तो छात्रवृत्तियाँ मिलती थीं। मैं देखता था कि मुझसे भी अधिक सादगी से रहनेवाले लोग हैं। मैं ऐसे गरीब विद्यार्थियों के संपर्क में ठीक-ठीक आया था। एक विद्यार्थी लन्दन की गरीब बस्ती में हप्ते के दो शिलिंग देकर एक कोठरी में रहता था, और लोकार्ट की कोको की सस्ती दुकान में दो पेनीका कोको और रोटी खाकर अपना गुजारा करता था। उससे स्पर्धा करने की तो मेरी शक्ति नहीं थी, पर मैंने अनुभव किया कि मैं अवश्य ही दो के बदले एक कमरे में रह सकता हूँ और आधी रसोई अपने हाथ से भी बना सकता हूँ। इस प्रकार मैं हर महीने चार या पाँच पौण्ड में अपना निर्वाह कर सकता हूँ। सादी रहन-सहन पर पुस्तकें भी पढ़ चुका था। दो कमरे छोड़ दिये और एक कमरा किराये से लिया| एक अंगीठी खरीदी और सुबह का भोजन हाथ से बनाना शुरू किया। इसमें मुश्किल से बीस मिनट खर्च होते थे। ओट मील की लपसी बनाने और कोको के लिए पानी उबालने में कितना समय लगता ? दोपहर का भोजन बाहर कर लेता और शाम को फिर कोको बनाकर रोटी के साथ खा लेता। इस तरह मैं एक से सवा शिलिंग के अन्दर रोज के अपने भोजन की व्यवस्था करना सीख गया। यह मेरा अधिक से अधिक पढ़ाई का समय था। जीवन सादा बन जाने से समय अधिक बचा। दूसरी बार परीक्षा में बैठा और पास हुआ।

पर पाठक यह न मानें कि सादगी से मेरा जीवन नीरस बना होगा। उलटे, इन फेरफारों के कारण मेरी आन्तरिक और बाह्य स्थिति के बीच एकता पैदा हुई, कौटुम्बिक स्थिति के साथ मेरी रहन-सहन का मेल बैठा, जीवन अधिक सारमय बना और मेरे आत्मानन्द का पार न रहा।

जिस गति से रहन-सहन और खर्च में फेरफार हुए, उसी गति से अथवा उससे भी अधिक वेग से मैंने खुराक में फेरफार करना शुरू किया। मैंने देखा कि अन्नाहार विषयक अंग्रेजी पुस्तकों में लेखकों ने बहुत सूक्ष्मता से विचार किया था। घर से मिठाई-मसाले वगैरा जो मँगाये थे, सो लेने बन्द कर दिये, और मनने दूसरा मोड़ पकड़ा। इस कारण मसालों का प्रेम कम पड़ गया, और जो सब्जी रिचमंड में मसाले के अभाव में बेस्वाद मालूम होती थी,

वह अब सिर्फ उबाली हुई स्वादिष्ट लगने लगी। ऐसे अनेक अनुभवों से मैंने यह सीखा कि स्वाद का सच्चा स्थान जीभ नहीं, पर मन है।

आर्थिक दृष्टि तो मेरे सामने थी ही। उन दिनों एक पंथ ऐसा था, जो चाय-कोफी को हानिकारक मानता या-और कोको का समर्थन करता था। मैं यह समझ चुका था कि केवल उन्हीं वस्तुओं का सेवन करना योग्य है, जो शरीर-व्यापार के लिए आवश्यक हैं ! इस कारण मुख्यतः मैंने चाय और कोफी का त्याग किया और कोको को अपनाया।

ऊपर के प्रयोगों के साथ उप-प्रयोग तो बहुत हुए। कभी स्टार्चवाला आहार छोड़ा, कभी सिर्फ डबल-रोटी और फल पर ही रहा, और कभी पनीर, दूध और अण्डों का ही सेवन किया। यह आखिरी प्रयोग उल्लेखनीय है। यह पन्द्रह दिन भी नहीं चला। स्टार्च-रहित आहार का समर्थन करनेवालों ने अण्डों की खूब स्तुति की थी और यह सिद्ध किया था कि अण्डे माँस नहीं हैं। यह तो स्पष्ट की है कि अण्डे खाने में किसी जीवित प्राणी को दुःख नहीं पहुँचता। इस दलील के भुलावे में आकर मैंने माताजी के सम्मुख की हुई प्रतिज्ञा के रहते भी अण्डे खाये, पर मेरा वह मोह क्षणिक था। प्रतिज्ञा का नया अर्थ करने का मुझे अधिकार न था। अर्थ तो प्रतिज्ञा करानेवाले का ही माना जा सकता था। माँस न खाने की प्रतिज्ञा करानेवाली माता को अण्डों का तो खयाल ही नहीं हो सकता था, इसे मैं जानता था। इस कारण प्रतिज्ञा के रहस्य का बोध होते ही मैंने अण्डे छोड़े और प्रयोग भी छोड़ा।

विलायत में तो अन्नाहार एक नया धर्म ही था और इस कारण उस समय मैं जिस बस्ती में रहता था, उसमें मैंने अन्नाहारी मण्डल की स्थापना करने का निश्चय किया। यह संस्था कुछ समय तक तो अच्छी चली; पर कुछ महीनों के बाद इसका अन्त हो गया, क्योंकि मैंने अमुक मुदत के बाद अपने रिवाज के अनुसार वह बस्ती छोड़ दी। पर इस छोटे और अल्प अवधि के अनुभव से मुझे संस्थाओं का निर्माण करने और उन्हें चलाने का कुछ अनुभव प्राप्त हुआ।

१३. लज्जाशीलता – मेरी ढाल

अन्नाहारी मण्डल की कार्यकारिणी में मुझे चुन तो लिया गया था और उसमें मैं हर बार हाजिर भी रहता था, पर बोलने के लिए जीभ खुलती ही न थी। मैं कह सकता हूँ कि मेरा यह शरमीला स्वभाव दक्षिण अफ्रिका पहुँचने पर ही दूर हुआ। बिलकुल दूर हो गया, ऐसा तो आज भी नहीं कहा जा सकता। बोलते समय सोचना तो पड़ता ही है। नये समाज के सामने बोलते हुए मैं सकुचाता हूँ। बोलने से बचा जा सके, तो जरूर बच जाता हूँ।

अपने इस शरमीले स्वभाव के कारण मेरी फजीहत तो हुई, पर मेरा कोई नुकसान नहीं हुआ, बल्कि अब तो मैं लिख सकता हूँ कि मुझे फायदा हुआ है। पहले बोलने का यह संकोच मेरे लिए दुःखकर था, अब यह सुखकर हो गया है। एक बड़ा फायदा तो यह हुआ कि मैं शब्दों का मित्तव्यय करना सीखा। मनुष्य जाने-अनजाने भी प्रायः अतिशयोक्ति करता है, अथवा जो कहने योग्य है उसे छिपाता है, या दूसरे ढ़ंग से कहता है। मुझे अपनी लज्जाशीलता ढाल लगती थी। उससे मुझे परिपक्व बनने का लाभ मिला। सत्य की अपनी पूजा में मुझे उससे सहायता मिली।

१४. धर्मों का परिचय

विलायत में रहते मुझे कोई एक साल हुआ होगा। इस बीच दो थियोसॉफिस्ट मित्रों से मेरी पहचान हुई। दोनों सगे भाई थे और अविवाहित थे। उन्होंने मुझ से गीताजी की चर्चा की। वे एड़विन आर्नल्ड का गीताजी का अनुवाद पढ़ रहे थे। पर उन्होंने मुझे अपने साथ संस्कृत में गीता पढ़ने के लिए न्योता। मैं शरमाया, क्योंकि मैंने गीता संस्कृत में या मातृभाषा में पढ़ी ही नहीं थी। मुझे उनसे कहना पड़ा कि मैंने गीता पढ़ी ही नहीं है, पर मैं उसे आपके साथ पढ़ने को लैयार हूँ। संस्कृत का मेरा अभ्यास भी नहीं के बराबर ही है। मैं उसे इतना ही समझ पाऊँगा कि अनुवाद में कोई गलत अर्थ होगा तो उसे सुधार सकूँगा। इस प्रकार मैंने उन भाईयों के साथ गीता पढ़ना शुरू किया। दूसरे अध्याय के अंतिम श्लोकों में से

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्सजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

विषयों का चिन्तन करनेवाले पुरुष को उन विषयों में आसक्ति पैदा होती है। फिर आसक्ति से कामना पैदा होती है और कामना से क्रोध पैदा होता है। क्रोध से मूढ़ता पैदा होती है, मूढ़ता से स्मृति-लोप होता है और स्मृति-लोप से बुद्धि नष्ट होती है। और जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, उसका खुद का नाश हो जाता है।

इन श्लोकों का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा। उनकी भनक मेरे कान में गूँजती ही रही। उस समय मुझे लगा कि भगवद्गीता अमूल्य ग्रंथ है। यह मान्यता धीरे-धीरे बढ़ती गयी, और आज तत्त्वज्ञान के लिए मैं उसे सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ। निराशा के समय में इस ग्रन्थ ने मेरी अमूल्य सहायता की है।

इन्हीं भाईयों ने मुझे सुझाया कि मैं आर्नल्ड का बुद्ध-चरित पढ़ूँ | उस समय तक तो मुझे सर एडविन आर्नल्ड के गीता के अनुवाद का ही पता था। मैंने बुद्ध-चरित भगवद् गीता से

भी अधिक रस-पूर्वक पढ़ा। पुस्तक हाथ में लेने के बाद उसे समाप्त करके ही छोड़ सका। इन्हीं भाईयों के कहने से मैंने ब्लैवट्स्की की पुस्तक की टु थिर्यासोफी (थिर्यासोफी की कुंजी) पढ़ी थी। उससे हिन्दू धर्म की पुस्तकें पढ़ने की इच्छा पैदा हुई और पादरियों के मुँह से सुना हुआ यह खयाल दिल से निकल गया कि हिन्दू धर्म अन्धविश्वासों से ही भरा हुआ है।

इन्हीं दिनों एक अन्नाहारी छात्रावास में मुझे मैंचेस्टर के एक ईसाई सज्जन मिले। उन्होंने मुझ से धर्म की चर्चा की। मैंने उन्हें राजकोट का अपना संस्मरण सुनाया। ये सुनकर दुःखी हुए। उन्होंने कहा, "मैं स्वयं अन्नाहारी हूँ। मद्यपान भी नहीं करता। यह सच है कि बहुत से ईसाई माँस खाते हैं और शराब पीते हैं; पर इस धर्म में दो में से एक भी वस्तु का सेवन करना कर्तव्य-रूप नहीं है। मेरी सलाह है कि आप बाईबल पढ़ें।" मैंने उनकी यह सलाह मान ली। उन्होंने बाईबल खरीद कर मुझे दी। मैंने उसे पढ़ना शुरू किया, पर मैं 'पुराना इकरार' (ओल्ड टेस्टामेण्ट) तो पढ़ ही न सका।

पर जब 'नये इकरार' (न्यू टेस्टामेण्ट) पर आया, तो कुछ और ही असर हुआ। ईसा के 'गिरि-प्रवचन' का मुझ पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उसे मैंने हृदय में बसा लिया। बुद्धि ने गीताजी के साथ उसकी तुलना की 'जो तुझसे कुर्ता माँगे उसे अँगरखा भी दे दे', 'जो तेरे दाहिने गाल पर तमाचा मारे, बायाँ गाल भी उसके सामने कर दे' – यह पढ़कर मुझे अपार आनन्द हुआ। शाम भट्ट के छप्पय की याद आ गयी। मेरे बालमन ने गीता, आर्नल्ड-कृत बुद्ध-चरित और ईसा के वचनों का एकीकरण किया। मन को यह बात जँच गयी कि त्याग में धर्म है।

मैं धर्म के इस परिचय से आगे न बढ़ सका। अपनी परीक्षा की पुस्तकों के अलावा दूसरा कुछ पढ़ने की फुरसत मैं नहीं निकाल सका। पर मेरे मनने यह निश्चय किया कि मुझे धर्म-पुस्तकें पढ़नी चाहिए और सब मुख्य धर्मों का परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए।

भाग-३: भारत में बारिस्टर

१५. भारत में वापसी

परीक्षायें पास करके मैं १० जून, १८९१ के दिन बारिस्टर कहलाया। ११ जून को ढ़ाई शिलिंग देकर इंग्लैण्ड के हाईकोर्ट में अपना नाम दर्ज कराया और १२ जून को हिन्दुस्तान के लिए रवाना हुआ।

पर मेरी निराशा और मेरे भय की कोई सीमा न थी। मैंने अनुभव किया कि कानून तो मैं निश्चय ही पढ़ चुका हूँ, पर ऐसी कोई भी चीज मैंने सीखी नहीं है, जिससे मैं वकालत कर सकूँ। कानून पढ़े, पर वकालत करना न सीखा। इसके अलावा, पढ़े हुए कानूनों में हिन्दुस्तान के कानून का तो नाम तक न था। मैं यह जान ही न पाया कि हिन्दु शास्त्र और इस्लामी कानून कैसे हैं। न मैंने अर्जी-दावा तैयार करना सीखा। मैं बहुत परेशान हुआ। पर एक वकील के नाते आजीविका प्राप्त करने की शक्ति पाने के विषय में भी मेरे मन में बड़ी शंका उत्पन्न हो गयी।

मैं माँ के दर्शनों के लिए अधीर हो रहा था। जब हम घाट पर पहुँचे, मेरे बड़े भाई वहाँ मौजूद ही थे। माता के स्वर्गवास का मुझे कुछ पता न था। मुझे यह खबर विलायत में ही मिल सकती थी, पर आघात को हलका करने के विचार से बम्बई पहुँचने तक मुझे इसकी कोई खबर न देने का निश्चय बड़े भाई ने कर रखा था। पिता की मृत्यु से मुझे जो आघात पहुँचा था, उसकी तुलना में माता की मृत्यु की खबर से मुझे बहुत अधिक आघात पहुँचा। पर मुझे याद है कि इस मृत्यु के समाचार सुनकर मैं फूट-फूटकर रोया न था। मैं अपने आँसुओं को भी रोक सका था, और मैंने अपना रोज का कामकाज इस तरह शुरू कर दिया था, मानो माता की मृत्यु हुई ही न हो।

जाति का झगड़ा मौजूद ही था। उसमें दो तड़े पड़ गयी थीं। एक पक्षने मुझे तुरन्त जाति में ले लिया। दूसरा पक्ष न लेने पर दटा रहा। जाति में लेनेवाले पक्ष को संतुष्ट करने के लिए

राजकोट ले जाने से पहले भाई मुझे नासिक ले गये। जाति की जिस तड़ से मैं बहिष्कृत रहा, उसमें प्रवेश करने का प्रयत्न मैंने कभी नहीं किया, न मैंने जाति के किसी मुखिया के प्रति मन में कोई रोष रखा। उनमें मुझे तिरस्कार से देखनेवाले लोग भी थे। उनके साथ मैं नम्रता का बरताव करता था। जाति के बहिष्कार-सम्बन्धी कानून का मैं संपूर्ण आदर करता था। अपने सास-ससुर के घर अथवा अपनी बहन के घर मैं पानी तक न पीता था। वे छिपे तौर पर पिलाने को तैयार भी होते, पर जो काम खुले तीरसे न किया जा सके, उसे छिपकर करने के लिए मेरा मन ही तैयार न होता था।

मेरे इस व्यवहार का परिणाम यह हुआ कि जाति की ओर से मुझे कभी कोई कष्ट नहीं दिया गया। यही नहीं, बल्कि आज तक मैं जाति के एक विभाग में विधिवत् बहिष्कृत माना जाता हूँ, फिर भी उनकी ओर से मैंने सम्मान और उदारता का ही अनुभव किया है। उन्होंने मेरे कार्य में मुझे मदद भी दी है, और मुझ से यह आशा तक नहीं रखी कि जाति के लिए मैं कुछ न कुछ करूँ। मैं ऐसा मानता हूँ कि यह मधुर फल मेरे अप्रतिकारक ही परिणाम है। यदि मैंने जाति में सम्मिलित होने की खटपट की होती, अधिक तड़े पैदा करने का प्रयत्न किया होता, जातिवालों को छेड़ा-चिढ़ाया होता, तो वे अवश्य मेरा विरोध करते और केवल मिथ्यात्व का पोषण करनेवाला बन जाता।

राजकोट में तुरन्त धन्धा शुरू करता हूँ, तो हँसी होती है। मेरे पास ज्ञान तो इतना भी न था कि राजकोट में पास हुए वकील के मुकाबले में खड़ा हो सकूँ तिस पर फीस उससे दस गुनी लेने का दावा। कौन मूर्ख मुवकिकल मुझे काम देता? मित्रों की सलाह यह रही कि मुझे कुछ समय के लिए बम्बई जाकर हाईकोर्ट की वकालत का अनुभव प्राप्त करना और हिन्दुस्तान के कानून का अध्ययन करना चाहिए और कोई मुकदमा मिल सके तो उसके लिए कोशिश करनी चाहिए। मैं बम्बई के लिए रवाना हुआ। लेकिन मैं चार-पाँच महीने से अधिक बम्बई में रह ही न सकता था, क्योंकि खर्च बढ़ता जाता था और आमदनी, कुछ भी न थी। कमिशन मैंने नहीं ही दिया। फिर भी ममीबाई का मुकदमा तो मुझे मिला। मुकदमा

आसान था। मुझे ब्रीफ के (मेहनताने के) रु. ३० मिले। मुकदमा एक दिन से ज्यादा चलनेवाला न था।

मैंने पहली बार स्मोल कॉज कोर्ट में प्रवेश क्रिया। मैं प्रतिवादी की तरफ से था, इसलिए मुझे जिरह करनी थी। में खड़ा तो हुआ, पर पैर काँपने लगे। सिर चकराने लगा। मुझे ऐसा लगा, मानों अदालत घूम रही है। सवाल कुछ सुझते ही न थे। जज हँसा होगा। वकीलों को तो मजा आया ही होगा। पर मेरी आँखों के सामने तो अंधेरा था- मैं देखता कया ? मैं बैठ गया। दलाल से कहा, "मुझ से यह मुकदमा नहीं चल सकेगा। आप पटेल को सौंपिये। मुझे दी हुई फीस वापस से लीजिये।" पटेल को उसी दिन के ५१ रुपये देकर वकील किया गया। उनके लिए तो वह एक बच्चों का खेल था।

मैं भागा मुझे याद नहीं कि मुवकिकल जीता या हारा। मैं शरमाया। मैंने निश्चय किया जब तक पूरी हिम्मत न आ जाय, कोई मुकदमा न लूँगा; मैंने सोचा कि मैं शिक्षक का काम तो अवश्य ही कर सकता हूँ। मैंने अंग्रेजी का अभ्यास काफी किया था। अतएव मैंने सोचा कि यदि किसी हाईस्कूल में मैट्रिक की कक्षा में अंग्रेजी सिखाने का काम मिल जाए तो कर लूँ। खर्च का गड़ढा कुछ तो भरे!

मैंने अखबारों में विज्ञापन पढ़ा : "आवश्यकता है, अंग्रेजी शिक्षक की, प्रतिदिन एक घंटे के लिए। वेतन रु. ७५।" यह एक प्रसिद्ध हाईस्कूल का विज्ञापन था। मैंने प्रार्थना पत्र भैजा। मुझे प्रत्यक्ष मीलने की आज्ञा हुई। में बड़ा उमंगों के साथ मिलने गया। पर जब आचार्य को पता चला कि मैं बी.ए. नहीं हूँ, तो उन्होंने मुझे खेदपूर्वक बिदा कर दिया।

"पर मैंने लन्दन की मैट्रिक्युलेशन परीक्षा पास की है। लेटिन मेरी दूसरी भाषा थी।" मैंने कहा।

"सो ठीक है, पर हमें तो ग्रेज्युएट की ही आवश्यकता है।"

मैं लाचार हो गया। मेरी हिम्मत छूट गयी। बड़े भाई भी चिन्तित हुए। हम दोनों ने सोचा कि बम्बई मैं अधिक समय बिताना निरर्थक है।

बम्बई से मैं राजकोट पहुँचा। वहाँ अलग दफतर खोला। गाड़ी कुछ चली अर्जियाँ लिखने का काम मिलने लगा और हर महीने औसत रु. ३०० की आमदानी होने लगी। अर्जी-दावे लिखने का यह काम मुझे मेरी होशियारी के कारण नहीं मिलने लगा था, कारण था वसीला। बड़े भाई के साथ काम करनेवाले वकील की वकालत जमी हुई थी। उनके पास जो बहुत महत्त्व के अर्जी-दावे आते अथवा जिन्हें वे महत्त्व का मानते, उनका काम तो बड़े बारिस्टर के पास ही जाता था। उनके गरीब भुवकिकलों के अर्जी-दावे लिखने का काम मुझे मिलता था।

१६. पहला आघात

पोरबंदर के भूतपूर्व राजा साहब को गद्दी मिलने से पहले मेरे भाई उनके मंत्री और सलाहकार थे। उन पर इस आशय का आरोप लगाया गया था कि उन दिनों उन्होंने राजा साहब को गलत सलाह दी थी। उस समय के पोलिटिकल एजेन्ट के पास यह शिकायत पहुँची थी और मेरे भाई के बारे में उनका खयाल खराब हो गया था। इस अधिकारी से मैं विलायत मैं मिला था। कह सकता हूँ कि वहाँ उन्होंने मुझ से अच्छी दोस्ती कर ली थी। भाई ने सोचा कि इस परिचय का लाभ उठाकर मुझे पोलिटिकल एजेण्ट से दो शब्द कहने चाहिए और उन पर जो खराब असर पड़ा है, उसे मिटाने की कोशिश करनी चाहिए। मुझे बात बिलकुल अच्छी न लगी। मैंने सोचा: मुझ को विलायत के न कुछ से परिचय का लाभ नहीं उठाना चाहिए। अगर मेरे भाई ने कोई बुरा काम किया है, तो सिफारिश से क्या होगा? अगर नहीं किया है, तो वे विधिवत् प्रार्थना-पत्र भेजें अथवा अपनी निर्दोषता पर विश्वास रखकर निर्भय रहें। यह दलील भाई के गले न उतरी। उन्होंने कहा, "तुम काठियावाड़ को नहीं जानते। दुनियादारी अभी तुम्हें सीखनी है। यहाँ तो वसीले से सारे काम चलते हैं। तुम्हारे समान भाई अपने परिचित अधिकारी से सिफारिश के दो शब्द कहने का मौका आने पर दूर हट जाए, तो वह उचित नहीं कहा जाएँगा।"

मैं भाई की इच्छा को टाल नहीं सका। अपनी मर्जी के खिलाफ मैं गया। अफसर के पास जाने का मुझे कोई अधिकार न था। मुझे इसका खयाल था कि जाने में मेरा स्वाभिमान नष्ट होगा। फिर भी मैंने उससे मिलने का समय माँगा। मुझे समय मिला और मैं मिलने गया। पुराने परिचय का स्मरण कराया, पर मैंने तुरन्त ही देखा कि विलायत और काठियावाड़ में फर्क है। अपनी कुर्सी पर बैठे हुए अफसर और छुट्टी पर गये हुए अफसर में भी फर्क होता है। अधिकारी ने परिचय की बात मान ली, पर इसके साथ ही वह अधिक अकड़ गया। मैंने उसकी अकड़ में देखा और आँखों में पढ़ा, मानो वे कह रही हो कि 'उस परिचय का लाभ उठाने के लिए तो तुम नहीं आये हो न ?' यह समझते हुए भी मैंने अपनी बात शुरू की। साहब अधीर हो गये। बोले, "तुम्हारे भाई प्रपंची हैं। मैं तुमसे ज्यादा बातें सुनना नहीं चाहता।

मुझे समय नहीं है। तुम्हारे भाई को कुछ कहना हो तो वे विधिवत् प्रार्थना-पत्र दें।" यह उत्तर पर्याप्त था, यथार्थ था। पर गरज तो बावली होती है न? मैं अपनी बात कहे जा रहा था। साहब

उठे, "अब तुम्हें जाना चाहिए।"

मैंने कहा, "पर मेरी बात तो पूरी सुन लीजिए।" साहब खुब चिढ़ गये। "चपरासी, इसे दरवाजा दिखाओ!" चपरासी ने मुझे हाथ से धक्का देकर दरवाजे के बाहर कर दिया।

साहब गये। चपरासी गया। मैं चला, अकुलाया, खीझा। मैंने तुरंत एक पत्र घसीटा: "आपने मेरा अपमान किया है। चपरासी के जरिये मुझ पर हुमला किया है। आप माफी नहीं मागेंगे, तो मैं आप पर मानहानि का विधिवत् दावा करूँगा।" थोड़ी ही देर में साहब का सवार जवाब दे गया। उसका सार यह था:

"तुमने मेरे साथ असभ्यता का व्यवहार किया। जाने के लिए कहने पर भी तुम नहीं गये, इससे मैंने जरूर अपने चपरासी को तुम्हें दरवाजा दिखाने के लिए कहा। चपरासी के कहने पर भी तुम दफतर से बाहर नहीं गये, तब उसने तुम्हें दफ्तर से बाहर कर देने के लिए आवश्यक बल का उपयोग किया। तुम्हें जो करना हो सो करने के लिए तुम स्वतन्त्र हो।"

यह जवाब जेब में डालकर मैं मुँह लटकाये घर लौटा। भाई को सारा हाल सुनाया। वे दुःखी हुए। पर वे मुझे क्या तसल्ली देते ? मैंने वकील मित्रों से चर्चा की। मैं कौन दावा दायर करना जानता था ? उन दिनों सर फीरोज शाह मेहता अपने किसी मुकदमे के सिलसिले में राजकोट आये हुए थे। मेरे जैसा नया बारिस्टर उनसे कैसे मिल सकता था? पर उन्हें बुलानेवाले वकील के द्वारा पत्र भेजकर मैंने उनकी सलाह पुछवायी ? उनका उत्तर था: "गांधी से कहिये, ऐसे अनुभव तो सब वकील-बारिस्टरों को हुए होंगे। तुम अभी नये ही हो। विलायत की खुमारी अभी तुम पर सवार है। तुम अंग्रेज अधिकारियों को पहचानते नहीं हो। अगर तुम्हें सुख से रहना हो और दो पैसे कमाने हों, तो मिली हुई चिट्ठी फाड़ डालो

और जो अपमान हुआ है उसे पी जाओ। मामला चलाने से तुम्हें एक पाई का भी लाभ न होगा। उलटे, तुम बरबाद हो जाओगे। तुम्हें अभी जीवन का अनुभव प्राप्त करना है।"

मुझे यह सिखावन जहर की तरह कड़वी लगी, पर उस कड़वी घूँट को पी जाने के सीवा और कोई उपाय न था। मैं अपमान को भूल तो न सका, पर मैंने उसका सदुपयोग किया। मैंने नियम बना लिया: "मैं फिर कभी अपने को ऐसी स्थिति में नहीं पड़ने दूँगा, इस तरह किसी की सिफारिश न करूँगा।" इस नियम का मैंने कभी उल्लंघन नहीं किया। इस आघात ने मेरे जीवन की दिशा बदल दी।

मेरा उक्त अधिकारी के यहाँ जाना अवश्य दोषयुक्त था। पर अधिकारी की अधीरता, उसके रोष और उद्धतता के सामने मेरा दोष छोटा हो गया। दोष का दण्ड चपरासी का धक्का न था। मेरा ज्यादातर काम तो उसीकी अदालत में रहता था। खुशामद मैं कर ही नहीं सकता था। मैं इस अधिकारी को अनुचित रीत से रिझाना नहीं चाहता था। उसे नालिश की धमकी देकर मैं नालिश न करूँ और उसे कुछ भी न लिखूँ यह भी मुझे अच्छा न लगा।

इस बीच मुझे काठियावाड़ के रियासती षडयंत्रों का भी कुछ अनुभव हुआ। काठियावाड़ अनेक छोटे-छोटे राज्यों का प्रदेश है। यहाँ मुत्सद्दियों का बड़ा समाज होना स्वाभाविक ही था। राज्यों के बीच सूक्ष्म षड्यंत्र चलते, पदों की प्राप्ति के लिए साजिशें होतीं, राजा कच्चे कान का और परवश रहता। साहबों के अर्दलियों तक की खुशामद की जाती। सरिश्तेदार तो साहब से भी सवाया होता; क्योंकि वही तो साहब की आँख, कान और दुभाषिये का काम करता था। सरिश्तेदार की इच्छा ही कानून थी। सरिश्तेदार की आमदनी साहब की आमदनी से ज्यादा मानी जाती थी। संभव है, इसमें अतिशयोक्ति हो, पर सरिश्तेदार के अल्प वेतन की तुलना में उसका खर्च अवश्य ही अधिक होता था।

यह वातावरण मुझे विष-सा प्रतीत हुआ। मैं अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कैसे कर सकूँगा, इसकी चिन्ता बराबर बनी रहती।

मैं उदासीन हो गया। भाई ने मेरी उदासीनता देखी। एक विचार यह आया कि कहीं नौकरी कर लूँ, तो मैं इन खटपटों से मुक्त रह सकता हूँ। पर बिना खटपट के दीवान का या न्यायाधीश का पद कैसे मिल सकता था ? वकालत करने में साहब के साथ का झगड़ा बाधक बनता था। मैं अकुलाया।

इसी बीच भाई के पास पोरबंदर की एक मेमन फर्म का संदेशा आया: "दक्षिण अफ्रिका में हमारा व्यापार है। हमारी फर्म बड़ी है। वहाँ हमारा एक बड़ा मुकदमा चल रहा है। चालीस हजार पौंड़ का दावा है। मामला बहुत लम्बे समय से चल रहा है। हमारे पास अच्छे-से-अच्छे वकील-बारिस्टर हैं। अगर आप अपने भाई को भेजें, तो वे हमारी मदद करें और उन्हें भी कुछ मदद मिल जाए। वे हमारा मामला हमारे वकील को अच्छी तरह समझा सकेंगे। इसके सिवा वे नया देश देखेंगे और कई नये

लोगों से उनकी जान-पहचान होगी।"

मैंने पूछा, "आप मेरी सेवायें कितने समय के लिए चाहते हैं ? आप मुझे वेतन क्या देंगे?"

"हमें एक साल से अधिक आपकी जरूरत नहीं रहेगी। आपको पहले दर्जे का मार्गव्यय देंगे और निवास तथा भोजन-खर्च के अलावा १०५ पौंड देंगे।"

इसे वकालत नहीं कह सकते। वह नौकरी थी। पर मुझे तो जैसे भी बने हिन्दुस्तान छोड़ना था। नया देश देखने को मिलेगा और अनुभव प्राप्त होगा सो अलग। भाई को १०५ पौंड भेजूँगा तो घर का खर्च चलाने में कुछ मदद होगी। यह सोचकर मैंने वेतन के बारे में बिना कुछ झिक-झिक किये ही सेठ अब्दुल करीम का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और मैं दक्षिण अफ्रिका जाने के लिए तैयार हो गया।

भाग-४ : दक्षिण अफ्रिका में

१७. दक्षिण अफ्रिका पहुँचा

बारिस्टर गांधी

नेटाल के बन्दरगाह को डरबन कहते हैं और नेटाल बन्दर के नाम से भी पहचाना जाता है। मुझे लेने के लिए अब्दुल्ला शेठ आये थे। स्टीमर के घाट (डक) पर पहुँचने पर जब नेटाल के लोग अपने मित्रों को लेने स्टीमर पर आये, तभी मैं समझ गया कि यहाँ हिन्दुस्तानियों की अधिक इज्जत नहीं है। अब्दुल्ला सेठ को पहचाननेवाले उनके साथ जैसा बरताव करते थे, उसमें भी मुझे एक प्रकार की असभ्यता दिखायी पड़ी थी, जो मुझे व्यथित करती थी। अब्दुल्ला सेठ इस असभ्यता को सह लेते थे। वे उसके आदी बन गये थे। मुझे जो देखते वे कुछ कुतूहल की दृष्टि देखते थे। अपनी पोशाक के कारण मैं दूसरे हिन्दुस्तानियों से कुछ अलग पड़ जाता था। मैंने उस समय 'फ्रॉक कोट' वगैरा पहने थे और सिर पर बंगाली ढंग की पगड़ी पहनी थी।

वे दूसरे या तीसरे दिन मुझे डरबन की अदालत दिखाने ले गये। वहाँ कुछ जान-पहचान करायी। अदालत में मुझे अपने वकील के पास बैठाया। मजिस्ट्रेट मुझे बार-बार देखता रहा। उसने मुझे पगड़ी उतारने के लिए कहा। मैंने इनकार किया और अदालत छोड़ दी।

मेरे भाग्य में यहाँ भी लड़ाई ही बदी थी। मैंने पगड़ी के किस्से को लेकर अपने और पगड़ी के बचाव में समाचारपत्रों के नाम एक पत्र लिखा। अखबारों में मेरी पगड़ी की खूब चर्चा हुई। 'अनवेलकम विजिटर'—अवांछित अतिथि - शीर्षक से अखबारों में मेरी चर्चा हुई, और तीन-चार दिन के अंदर ही मैं अनायास दक्षिण अफ्रिका में प्रसिद्धि पा गया। मेरी पगड़ी तो लगभग अन्त तक बनी रही।

१८. प्रिटोरिया जाते हुए

मैं इस प्रकार जान-पहचान कर रहा था कि इतने में फर्म के वकील की तरफ से पत्र मिला कि मुकदमे की तैयारी की जानी चाहिए और खुद अब्दुल्ला सेठ को प्रिटोरिया जाना चाहिए अथवा किसी को वहाँ भेजना चाहिए। अब्दुल्ला सेठने वह पत्र मुझे पढ़ने को दिया और पूछा, "आप प्रिटोरिया जाएँगें ?" मैंने कहा, "मुझे मामला समझाइये, तभी कुछ कह सकूँगा। अभी तो मैं नहीं जानता कि मुझे वहाँ क्या करना होगा।" उन्होंने अपने मुनीमों से कहा कि वे मुझे मामला समझा दें।

मैं सातवें या आठवे दिन डरबन से रवाना हुआ। मेरे लिए पहले दर्जे का टिकट कटाया गया। वहाँ रेल में सोने की सुविधा के लिए पाँच शिलिंग का अलग टिकट कटाना होता था। अब्दुल्ला सेठने उसे कटाने का आग्रह किया, पर मैंने हठवश, अभिमानवश और पाँच शिलिंग बचाने के विचार से विस्तर का टिकट कटाने से इनकार कर दिया। अब्दुल्ला सेठने मुझे चेताया, "देखिये, यह देश दूसरा है, हिन्दुस्तान नहीं है। खुदा की महेरबानी है। आप पैसे की कंजूसी न कीजिए। आवस्यक सुविधा प्राप्त कर लीजिए।

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और निश्चिन्त रहने को कहा।

ट्रेन लगभग नौ बजे नेटाल की राजधानी मेरित्सबर्ग पहुँची। यहाँ बिस्तर दिया जाता था। रेलवे के किसी नौकर ने आकर पूछा, "आपको बिस्तर की जरूरत है ?" मैंने कहा, मेरे पास अपना बिस्तर है।" वह चला गया। इस बीच एक यात्री आया। उसने मेरी तरफ देखा। मुझे भिन्न वर्ण का पाकर वह परेशान हुआ, बाहर निकला और एक-दो अफसरों को लेकर आया। किसी ने मुझे कुछ न कहा। आखिर एक अफसर आया। उसने कहा, "इधर आओ। तुम्हें आखिरी डिब्बे में जाना है।"

मैंने कहा, "मेरे पास पहले दर्जे का टिकट है।"

उसने जवाब दिया, "इसकी कोई बात नहीं। में तुमसे कहता हूँ कि तुम्हें आखिरी डिब्बे में जाना है।"

"मैं कहता हूँ कि मुझे इस डिब्बे में डरबन से बैठाया गया है और मैं इसी में जाने का इरादा रखता हूँ।"

अफसर ने कहा, "यह नहीं हो सकता। तुम्हें उतरना पड़ेगा, और न उतरे तो सिपाही उतारेगा।"

मैंने कहा, "तो फिर सिपाही भले उतारे, मैं खुद तो नहीं उतरूँगा।"

सिपाही आया। उसने मेरा हाथ पकड़ा और मुझे धक्का देकर नीचे उतारा। मेरा सामान उतार लिया। मैंने दूसरे डिब्बे में जाने से इनकार कर दिया। ट्रेन चल दी। मैं वेटिंग खूम में बैठ गया। अपना "हेण्ड-बैग" साथ में रखा। बाकी सामान को हाथ न लगाया। रेलवेवालों ने उसे कहीं रख दिया।

सरदी का मौसम था। दक्षिण अफ्रिका की सरदी ऊँचाईवाले प्रदेशों में बहुत तेज होती है। मेरित्सबर्ग इसी प्रदेश में था। इससे ठण्ड खुब लगी। मेरा ओवर-कोट मेरे सामान में था। पर सामान माँगने की हिम्मत न हुई। फिर अपमान हो तो ? ठण्ड से मैं काँपता रहा। कमरे में दीया न था। आधी रात के करीब एक यात्री आया। जान पड़ा कि वह कुछ बात करना चाहता है, पर मैं बात करने की मनः स्थिति में न था। मैंने अपने धर्म का विचार किया: "या तो मुझे अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए या लौट जाना चाहिए, नहीं तो जो अपमान हों उन्हें सहकर प्रिटोरिया पहुँचना चाहिए और मुकदमा खतम करके देश लौट जाना चाहिए। मुकदमा अधूरा छोड़कर भागना तो नामर्दी होगी। मुझे जो कष्ट सहना पड़ा है, सो तो ऊपरी कष्ट है। वह गहराई तक पैठे हुए महारोग का लक्षण है। यह महारोग है रंग-द्वेष। यदि मुझ में इस गहरे रोग को मिटाने की शक्ति हो, तो उस शक्ति का उपयोग मुझे करना चाहिए। ऐसा करते हुए स्वयं जो कष्ट सहने पड़ें सो सब सहने चाहिए और उनका विरोध रंग-द्वेष को मिटाने की दृष्टि से ही करना चाहिए।

यह निश्चय करके मैंने दूसरी ट्रेन में, जैसे भी हो, आगे ही जाने का फैसला किया।

सबेरे ही सबेरे मैंने जनरल मैनेजर को शिकायत का लम्बा तार भेजा। दादा अब्दुल्ला को भी खबर भेजी। अब्दुल्ला शेठ तुरन्त जनरल मैनेजर से मिले। जनरल मैंनेजर ने अपने आदमियों के व्यवहार का बचाव किया, पर बतलाया कि मुझे बिना किसी रुकावट के मेरे स्थान तक पहुँचाने के लिए स्टेशन-मास्टर को कह दिया गया है। अब्दुल्ला सेठने मेरित्सबर्ग के हिन्दु व्यापारियों को भी मुझसे मिलने और मेरी सुख-सुविधा का खयाल रखने का तार भेजा और दूसरे स्टेशनों पर भी इसी आशय के तार रवाना किये। इससे व्यापारी मुझे मिलने स्टेशन पर आये। उन्होंने अपने ऊपर पड़नेवाले कष्टों की कहानी मुझे सुनायी और मुझसे कहा कि आप पर जो बीती है, उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। जब हिन्दुस्तानी लोग पहले या दूसरे दर्जे में सफर करते हैं, तो अधिकारियों और यात्रियों की तरफ से रुकावट खड़ी होती ही है। दिन ऐसी ही बातें सुनने में बीता। रात पड़ी। ट्रेन आयी मेरे लिए जगह तैयार ही थी। बिस्तर का जो टिकट मैंने डरबन में कटाने से इनकार किया था, वह मेरित्सबर्ग में कटाया। ट्रेन मुझे चार्ल्सटाउन की और ले चली।

ट्रेन सुबह चार्ल्सटाउन पहुँचती थी। उन दिनों चार्ल्सटाउन से जोहानिसबर्ग पहुँचने के लिए ट्रेन नहीं थी, घोड़ों की सिकरम थी और बीच में एक रात स्टैन्डरटन में रुकना पड़ता था। मेरे पास सिकरम का टिकट था। मेरे एक दिन देर से पहुँचने के कारण वह टिकट रद नहीं होता था। इसके सिवा, अब्दुल्ला सेठने सिकरम वाले के नाम चार्ल्सटाउन के पते पर तार भी कर दिया था।

पर उसे तो बहाना ही खोजना था, इसलिए मुझे निरा अजनबी समझकर उसने कहा, "आप का टिकट तो रद हो चुका है।" मैंने उचित उत्तर दिया। पर टिकट रद होने की बात तो मुझे दूसरे ही कारण से कही गयी थी। यात्री सब सिकरम के अन्दर ही बैठते थे। लेकिन मैं तो 'कुली' की गिनती में था। अजनबी दिखाई पड़ता था। इसलिए सिकरमवाले की नियत यह थी कि मुझे गोरे यात्रियों के पास न बैठाना पड़े तो अच्छा हो। सिकरम के बाहर, अर्थात् कोचवान की बगल में दायें-बायें, दो बैठके थीं। उनमें से एक पर सिकरम कम्पनी का एक गोरा मुखिया बैठता था। वह अन्दर बैठा और मुझे कोचवान की बगल में बैठाया। मैं समझ

गया कि यह निरा अन्याय है—अपमान है। पर मैंने इस अपमान को पी जाना उचित समझा। मैं जोर-जबरदस्ती से अन्दर बैठ सकूँ, ऐसी स्थिति थी ही नहीं। अगर तकरार में पड़ू तो सिकरम चली जाए और मेरा एक दिन और टूट जाए; और फिर दूसरे दिन क्या हो, सो तो दैव ही जाने। इसलिए मैं समझदारी से काम लेकर बाहर बैठ गया। पर मन में तो बहुत झुँझलाया।

लगभग तीन बजे सिकरम पारडीकोप पहुँची। अब उस गोरे मुखिया ने चाहा कि जहाँ मैं बैठा था वहाँ वह बैठे। उसे सिगरेट पीनी थी। थोड़ी हवा भी खानी होगी। इसलिए उसने एक मैला-सा-बोरा, जो वहीं कोचवान के पास पड़ा था, उठा लिया और पैर रखने के पटिये पर बिछाकर मुझसे कहा, "सामी तू यहाँ बैठ। मुझे कोचवान के पास बैठना है।" में इस अपमान को सहने में असमर्थ था। इसलिए मैंने डरते-डरते उससे कहा, "तुमने मुझे यहाँ बैठाया और मैंने वह अपमान सह लिया। मेरी जगह तो अन्दर थी, अब तुम्हें बाहर बैठने की इच्छा हुई है और सिगरेट पीनी है, इसलिए तुम मुझे अपने पैरों के पास बैठाना चाहते हो। मैं अन्दर जाने को तैयार हूँ, पर तुम्हारे पैरों के पास बैठने को तैयार नहीं।"

मैं मुश्किल से इतना कह पाया था कि मुझ पर तमाचों की वर्षा होने लगी, और वह गोरा मेरी बाँह पकड़कर मुझे नीचे खींचने लगा। बैठक के पास ही पीतल के सीखचे थे। मैंने भूत की तरह उन्हें पकड़ लिया और निश्चय किया कि कलाई चाहे उखड़ जाए, पर सीखचे न छोडूँगा। मुझ पर जो बीत रही थी उसे अन्दर बैठे हुए यात्री देख रहे थे। वह गोरा मुझे गालियाँ दे रहा था, खींच रहा था, मार भी रहा था। पर मैं चुप था। वह बलवान था और मैं बलहीन। यात्रियों में से कइयों को दया आयी और उनमें से कुछ बोल उठे: "अरे भाई, उस बेचारे को वहाँ बैठा रहने दो। उसे नाहक मारो मत। उसकी बात सच है। वहाँ नहीं तो उसे हमारे पास अन्दर बैठने दो।" गोरेने कहा: 'हरगिज नहीं।' पर थोड़ा शरमिन्दा वह जरूर हुआ। अतएव उसने मुझे मारना बन्द कर दिया और मेरी बाँह छोड़ दी। दो-चार गालियाँ तो ज्यादा दीं, पर एक होटेण्टाट नौकर दूसरी तरफ बैठा था, उसे अपने पैरों के सामने बैठाकर खुद बाहर बैठा।

यात्री अन्दर बैठ गये। सिटी बजी। सिकरम चली। मेरी छाती तो धड़क ही रही थी। मुझे शक हो रहा था कि मैं जिन्दा मुकाम पर पहुँच सकूँगा या नहीं। वह गोरा मेरी ओर बराबर घूरता ही रहा। अँगुली दिखाकर बड़बड़ाता रहा: "याद रख, स्टैण्डरटन पहुँचने दे, फिर तुझे मजा चखाऊँगा।" मैं तो गूँगा ही बैठा रहा और भगवान से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना करता रहा।

रात हुई। स्टैण्डरसन पहुँचे। कई हिन्दुस्तानी चेहरे दिखाई दिये। मुझे कुछ तसल्ली हुई। नीचे उतरते ही हिन्दुस्तानी भाईयों ने कहा: "हम आपको ईसा सेठ की दुकान पर ले जाने के लिए ही खड़े हैं। हमें दादा अब्दुला का तार मिला है।" मैं बहुत खुश हुआ। उनके साथ सेठ ईसा हाजी सुमार की दुकान पर पहुँचा।

मैं सिकरम-कम्पनी के एजेण्ट को अपने साथ हुए व्यवहार की जानकारी देना चाहता था। मैंने एजेण्ट के नाम चिट्ठी लिखी। उस गोरेने जो धमकी दी थी उसकी चर्चा की और यह आश्वासन चाहा कि सुबह आगे की यात्रा शुरू होने पर मुझे दूसरे यात्रियों के पास अन्दर ही जगह दी जाए। एजेण्ट ने मुझे संदेशा भेजा: "स्टैण्डरटन से बड़ी सिकरम जाती है और कोचवान वगैरा बदल जाते हैं। जिस आदमी के खिलाफ आपने शिकायत की है, वह कल नहीं रहेगा। आपको दूसरे यात्रियों के पास ही जगह मिलेगी।" इस संदेशे से मुझे थोड़ी बेफिकरी हुई। मुझे मारनेवाले उस गोरे पर किसी तरह का कोई मुकदमा चलाने का तो मैंने विचार ही नहीं किया था। इसलिए मार का यह प्रकरण यहीं समाप्त हो गया।

सबेरे ईसा सेठ के लोग मुझे सिकरम पर ले गये। मुझे मुनासिब जगह मिली और बिना किसी हैरानी के मैं उस रात जोहानिसबर्ग पहुँच गया।

स्टैण्डरटन छोटा-सा गाँव है। जोहानिसबर्ग विशाल नगर है। अब्दुल्ला सेठने तार तो वहाँ भी दे ही दिया था। मुझे मुहम्मद कासिम कमरुद्दिन की दुकान का नाम-पता भी दिया था। उनका आदमी सिकरम के पड़ाव पर पहुँचा था, पर न मैंने उसे देखा और न वह मुझे पहचान सका। मैंने होटल में जाने का विचार किया। दो-चार होटलों के नाम जान लिए थे।

गाड़ी की। गाड़ीवाले से कहा कि, ग्राण्ड नेशनल होटल में ले चलो। वहाँ पहुँचने पर मैंनेजर के पास गया। जगह माँगी। मैंनेजर ने क्षणभर मुझे निहारा, फिर शिष्टाचार की भाषा में कहा, "मुझे खेद है, सब कमरे भरे पड़े हैं।" और मुझे बिदा किया। इसलिए मैंने गाड़ीवाले से मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन की दुकान पर ले चलने को कहा। वहाँ अब्दुलगनी सेठ मेरी राह देख रहे थे। उन्होंने मेरा स्वागत किया। मैंने होटल की अपनी बीती उन्हें सुनायी। वे खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले, "वे हमें होटल में कैसे उतरने देंगे ?"

मैंने पूछा: "क्यों नहीं ?"

"सो तो आप कुछ दिन रहने के बाद जान जाएँगे। देखिये, कल आपको प्रिटोरिया जाना है। वहाँ आपको तीसरे दर्जे में ही जगह मिलेगी। ट्रान्सवाल में नेटाल से अधिक कष्ट हैं। यहाँ हमारे लोगों को पहले या दूसरे दर्जे का टिकट दिया ही नहीं जाता।"

मैंने रेलवे के नियम माँगे। उन्हें पढ़ा। उनमें इस बात की गुंजाइश थी। ट्रान्सवाल के मूल कानून सूक्ष्मतापूर्वक नहीं बनाये जाते थे। रेलवे के नियमों का तो पूछना ही क्या था?

मैंने सेठ से कहा, "मैं तो फर्स्ट क्लास में ही जाऊँगा। और वैसे न जा सका तो प्रिटोरिया यहाँ से ३७ मील ही तो है। मैं वहाँ घोड़ागाडी करके चला जाऊँगा।"

अब्दुलगनी सेठने उससे लगनेवाले खर्च और समय की तरफ मेरा ध्यान खींचा। पर मेरे विचार से वे सहमत हुए। मैंने स्टेशन-मास्टर को पत्र भेजा। उसमें मैंने अपने बारिस्टर होने की बात लिखी; यह भी सूचित किया कि मैं हमेशा पहले दर्जे में ही सफर करता हूँ; प्रिटोरिया तुरन्त पहुँचने की आवश्यकता की तरफ भी उनका ध्यान खींचा, और उन्हें लिखा कि उनके उत्तर की प्रतीक्षा करने जितना समय मेरे पास नहीं रहेगा, अतएव पत्र का जवाब पाने के लिए मैं खुद ही स्टेशन पर पहुँचूँगा और पहले दर्जे का टिकट पाने की आशा रखूँगा। इसमें मेरे मन में थोड़ा पेच था। मेरा यह खयाल था कि स्टेशन-मास्टर लिखित उतर तो 'ना' का ही होगा। फिर, कुली बारिस्टर कैसे रहने होंगे, इसकी भी वह कोई कल्पना न कर सकेगा। इस लिए अगर मैं पूरे साहबी ठाठ में उसके सामने जाकर खड़ा

रहूँगा और उससे बात करूँगा, तो वह समझ जाएँगा और शायद मुझे टिकट दे देगा। अत एव मैं फ्रांक कोट, नेकटाई वगैरा डालकर स्टेशन पहुँचा | स्टेशन-मास्टर के सामने मैंने गिन्नी निकालकर रखी और पहले दर्जे का टिकट माँगा |

उसने कहा, "आपने ही मुझे चिट्ठी लिखी है ?" मैंने कहा, "जी हाँ यदि आप मुझे टिकट देंगे, तो मैं आप का एहसान मानूँगा | मुझे आज प्रिटोरिया पहुँचना ही चाहिए |"

स्टेशन-मास्टर हँसा | उसे दया आयी | वह बोला, "मैं ट्रान्सवालर नहीं हूँ | मैं होलैन्दर हूँ | आप की भावना को मैं समझ सकता हूँ | आप के प्रति मेरी सहानुभूति है | मैं आप को टिकट देना चाहता हूँ | पर एक शर्त है – अगर रास्ते में गार्ड आप को उतार दे और तीसरे दर्जे में बैठाये तो आप मुझे फाँसिये नहीं; यानी आप रेलवे कंपनी पर दावा न कीजिए | मैं चाहता हूँ कि आप की यात्रा निर्विघ्न पूरी हो। आप सज्जन है, यह तो मैं देख ही सकता हूँ।"

यों कहकर उसने टिकट काट दिया। मैंने उसका उपकार माना और उसे निश्चित किया।

अल्दुलगनी सेठ मुझे बिदा करने आये थे। यह कौतुक देखकर वे प्रसन्न हुए, उन्हें आश्चर्य हुआ। पर मुझे चेताया: "आप भलीभाँति प्रिटोरिया पहुँच जाएँ, तो समझूँगा कि बेड़ा पार हुआ। मुझे डर है कि गार्ड आप को पहले दर्जे में आराम से बैठने नहीं देगा, और गार्डने बैठने भी दिया, तो यात्री नहीं बैठने देंगे।"

मैं तो पहले दर्जे के डिब्बे में बैठा। ट्रेन चली। जर्मिस्टन पहुँचने पर गार्ड टिकट जाँचने आया। मुझे देखते ही खीझ उठा। अंगुली से इशारा करके मुझ से कहा, "तीसरे दर्जे में जाओ।" मैंने पहले दर्जे का अपना टिकट दिखाया। उसने कहा, "कोई बात नहीं, जाओ, तीसरे दर्जे में।"

इस डिब्बे में एक ही अंग्रेज यात्री था। उसने गार्ड को आड़े हाथों लिया: "तुम इन भले आदमी को क्यों परेशान करते हो ? देखते नहीं हो, इनके पास पहले दर्जे का टिकट है ? मुझे इनके बैठने से तनिक भी कष्ट नहीं है।"

यों कहकर उसने मेरी तरफ देखा और कहा: "आप इतमीनान से बैठे रहीये।"

गार्ड बडबडाया: "आप को कुली के साथ बैठना है, तो मेरा क्या बिगड़ता है ?" और चल दिया।

रात करीब आठ बजे ट्रेन प्रिटोरिया पहुँची।

१९. प्रिटोरिया में पहला दिन

सन् १८९३ का प्रिटोरिया १९१४ के प्रिटोरिया स्टेशन से बिलकुल भिन्न था। धीमी रोशनीवाली बत्तियाँ जल रही थीं। यात्री भी अधिक नहीं थे। मैंने सब यात्रियों को जाने दिया और सोचा कि टिकट कलेक्टर को थोड़ा फुरसत होने पर अपना टिकट दूँगा और यदि वह मुझे किसी छोटे-से होटल का ऐसे मकान का पता देगा तो वहाँ चला जाऊँगा, या फिर रात स्टेशन पर ही पड़ा रहूँगा। इतना पूछने के लिए भी मन बढ़ता न था, क्योंकि अपमान होने का डर था।

स्टेशन खाली हुआ। मैंने टिकट-कलेक्टर को टिकट देकर पूछताछ शुरू की। उसने सभ्यता से उत्तर दिये, पर मैंने देखा कि वह मेरी अधिक मदद नहीं कर सकता था। उसके बगल में एक अमेरिकन हब्शी सज्जन खड़े थे। उन्होंने मुझसे बातचीत शुरू की।

"मै देख रहा हूँ कि आप बिलकुल अजनबी हैं और यहाँ आप का कोई मित्र नहीं है। अगर आप मेरे साथ चलें, तो मैं आपको एक छोटे-से होटल में ले चलूँगा। उसका मालिक अमेरिकन है और मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। मेरा खयाल है कि वह आपको टिका लेगा।"

मुझे थोड़ा शक तो हुआ, पर मैंने इन सज्जन का उपकार माना और उनके साथ जाना स्वीकार किया। वे मुझे जोन्स्टन के फेमिली होटल में ले गये। पहले उन्होंने मि. जोन्स्टन को एक ओर ले जाकर थोड़ी बात की। मि. जोन्स्टन ने मुझे एक रात के लिए टिकाना कबूल किया, और वह भी इस शर्त पर कि भोजन मेरे कमरे में पहुँचा देंगे।

मि. जोन्स्टनने कहा, "मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे मनमें तो काले-गोरे का कोई भेद नहीं है, पर मेरे ग्राहक सब गोरे ही हैं। यदि मैं आप को भोजन-गृह में भोजन कराऊँ, तो मेरे ग्राहक बुरा मानेंगे और शायद वे चले जाएँगे।"

मैंने जवाब दिया, "आप मुझे एक रात के लिए रहने दे रहे हैं, इसे भी मैं आप का उपकार मानता हूँ। इस देश की स्थिति से मैं कुछ कुछ परिचित हो चुका हूँ। मैं आप की कठिनाई

को समझ सकता हूँ। मुझे आप खुशी से मेरे कमरे में खाना दीजिए। कल तक मैं दूसरा प्रबंध कर लेने की आशा रखता हूँ।

मुझे कमरा दिया गया। मैंने उसमें प्रवेश किया। एकान्त मिलने पर भोजन की राह देखता हुआ मैं विचारों में डूब गया। इस होटल में अधिक यात्री नहीं रहते थे। कुछ देर बाद भोजन के साथ वेटर को आता देखने के बदले मैंने मि. जोन्स्टन को देखा। उन्होंने कहा, "मैंने आपको कमरे में खाना देने की बात कही थी। पर मैंने उसमें शरम महसूस की, इसलिए अपने ग्राहकों से आपके विषय में बातचीत करके उनकी राय जानी। आप भोजनगृह में बैठकर भोजन करें, तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। इसके अलावा, आप यहाँ जितने दिन भी रहना चाहें रहें, उनकी ओर से कोई रुकावट नहीं होगी। इस लिए अब आप चाहें तो भोजन-गृह में आइये और जब तक जी चाहे यहाँ रहिये।" मैंने फिर उनका उपकार माना और मैं भोजन-गृह में गया। निश्चिन्त होकर भोजन किया।

दूसरे दिन सबेरे में वकील के घर गया। उनका नाम था, ए.डब्ल्यू. बेकर। उनसे मिला। अब्दुल्ला सेठने मुझे उनके बारे में कुछ बता दिया था। इसलिए हमारी पहली मुलाकात से मुझे कोई आश्चर्य न हुआ। वे मुझ से प्रेमपूर्वक मिले और मेरे बारे में कुछ बातें पूछीं, जो मैंने उन्हें बतला दीं। उन्होंने कहा, "बारिस्टर के नाते तो आप का यहाँ कोई उपयोग हो ही न सकेगा। इस मुकदमे के लिए हमने अच्छे-से-अच्छे बारिस्टर कर रखे हैं। मुकदमा लम्बा है और गुत्थियों से भरा हुआ है। इसलिए आपसे मैं आवश्यक तथ्य आदि प्राप्त करने का ही काम ले सकूँगा। पर इतना फायदा अवश्य होगा कि अपने मुवक्किल के साथ पत्र-व्यवहार करने में मुझे अब आसानी हो जाएँगी, और तथ्यादि की जो जानकारी मुझे प्राप्त करनी होगी, वह मैं आपके द्वारा मँगवा सकूँगा। आपके लिए अभी तक मैंने कोई मकान तो तलाश नहीं किया है। सोचा था कि आपको देखने के बाद खोज लूँगा। यहाँ रंगभेद बहुत है इसलिए घर मिलना आसान नहीं है। पर मैं एक बहन को जानता हूँ। वह गरीब है, भटियारे की स्त्री है। मेरा खयाल है कि वह आप को टिका लेगी। उसे भी कुछ मदद हो जाएँगी। चलिये, हम उसके यहाँ चले।"

यों कहकर वे मुझे वहाँ ले गये। मि. बेकर ने उस बहन को एक ओर ले जाकर उससे कुछ बातें कीं, और उसने मुझे टिकाना स्वीकार किया। हप्ते के पैंतीस शिलिंग देने का निश्चय हुआ।

२०. हिन्दुस्तानियों से परिचय

सारांश यह कि ट्रान्सवाल और ऑरेन्ज फ्री स्टेट के हिन्दुस्तानियों की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का गहरा अध्ययन मैं प्रिटोरिया में कर सका। इस अध्ययन का आगे चलकर मेरे लिए पूरा उपयोग होनेवाला है, इसकी मुझे जरा भी कल्पना नहीं थी।

ट्रान्सवाल में एक कड़ा कानून बना। उसके फल स्वरूप यह तय हुआ कि हरएक हिन्दुस्तानी को प्रवेश-फीस के रूप में तीन पौंड़ जमा कराने चाहिए उनके लिए अलग छोड़ी गयी जगह में ही वे जमीन मालिक हो सकते थे। पर वहाँ भी उन्हें व्यवहार में जमीन का स्वामित्व नहीं मिला। उन्हें मताधिकार भी नहीं दिया गया था। ये तो खास एशियाबासियों के लिए बने कानून थे। इसके अलावा जो कानून काले रंग के लोगों को लागू होते थे, वे भी एशियावासियों पर लागू होते थे। उनके अनुसार हिन्दुस्तानी लोग पटरी (फूटपाथ) पर अधिकार-पूर्वक चल नहीं सकते थे और रात नौ बजे के बाद परवाने के बिना बाहर नहीं निकल सकते थे।

मि. कोट्स के साथ रात को घूमने जाया करता था। कभी-कभी घर पहुँचने में दस भी बज जाते थे। अतएव पुलिस मुझे पकड़े तो ? यह डर जितना स्वयं मुझे था उससे अधिक मि. कोट्स को था। अपने हब्शियों को तो वे ही परवाने देते थे। लेकिन मुझे परवाना कैसे दे सकते थे ? मालिक अपने नौकर को ही परवाना देने का अधिकारी था। मैं लेना चाहूँ और मि. कोट्स देने को तैयार हो जाएँ, तो भी वह नहीं दिया जा सकता था, क्योंकि वैसा करना विश्वासघात माना जाता।

इसलिए मि. कोट्स या उनके कोई मित्र मुझे वहाँ के सरकारी वकील डॉ. क्राउजे के पास ले गये। हम दोनों एक ही 'इन' के बारिस्टर निकले। उन्हें यह बात असह्य जान पड़ी कि रात नौ बजे के बाद बाहर निकलने के लिए मुझे परवाना लेना चाहिए। उन्होंने मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट की। मुझे परवाना देने के बदले उन्होंने अपनी तरफ से एक पत्र दिया। उसका आसय यह था कि मैं चाहे जिस समय चाहे जहाँ जाऊँ, पुलिस को उसमें दखल

नहीं देना चाहिए। मैं इस पत्र को हमेशा अपने साथ रखकर घूमने निकलता था। कभी उसका उपयोग नहीं करना पड़ा। लेकिन इसे तो केवल संयोग ही समझना चाहिए।

पटरी पर चलने का प्रश्न मेरे लिए कुछ गंभीर परिणामवाला सिद्ध हुआ ! मैं हमेशा प्रेसिडेण्ट स्ट्रीट के रास्ते एक खुले मैदान में घूमने जाया करता था। इस मुहल्ले में प्रेसिडेण्ट कूगर का घर था। यह घर सब तरह के आडंबरों से रहित था। इसके चारों ओर कोई अहाता भी नहीं था। आसपास के दूसरे घरों में और इसमें कोई फरक नहीं मालूम होता था। घर के सामने पहरा देनेवाले संतरी को देखकर ही पता चलता था कि यह किसी अधिकारी का घर है। मैं प्रायः हमेशा ही इस सिपाही के बिलकुल पास से होकर निकलता था, पर वह मुझे कुछ नहीं कहता था।

सिपाही समय-समय पर बदला करते थे। एक बार एक सिपाही ने बिना चेताये, बिना पटरी पर से उतर जाने को कहे, मुझे धक्का मारा, लात मारी और नीचे उतार दिया। मैं तो गहरे सोच में पड़ गया। लात मारने का कारण पूछने से पहले ही मि. कोट्स ने, जो उसी समय घोड़े पर सवार होकर उधर से गुजर रहे थे, मुझे पुकारा और कहा:

"गांधी, मैंने सब देखा है। आप मुकदमा चलाना चाहें तो मैं गवाही दूँगा। मुझे उस बात का बहुत खेद है कि आप पर इस तरह हमला किया गया।"

मैंने कहा: "इसमें खेद का कोई कारण नहीं। सिपाही बेचारा क्या जाने ? उसके लिए तो काले-काले सब एक से ही हैं। वह हब्शियों को इसी तरह पटरी पर से उतारता होगा। इसलिए उसने मुझे भी धक्का मारा। मैंने तो नियम ही बना लिया है कि मुझ पर जो बीतेगी, उसके लिए मैं कभी अदालत में नहीं जाऊँगा। इस लिए मुझे मुकदमा नहीं चलाना है।"

"यह तो आपने अपने स्वभाव के अनुरूप ही बात कही है। पर आप इस पर फिरसे सोचिये। ऐसे आदमी को कुछ सबक तो देना ही चाहिए।"

इतना कहकर उन्होंने उस सिपाही से बात की और उसे उलाहना दिया। मैं सारी बात तो समझ नहीं सका। सिपाही डच था और उसके साथ उनकी बातें डच भाषा में हुई। सिपाही ने मुझ से माफी माँगी। मैं तो उसे पहले ही माफ कर चुका था।

लेकिन उस दिन से मैंने यह रास्ता छोड़ दिया। दूसरे सिपाहियों को इस घटना का क्या पता होगा ? मैं खुद होकर फिर लात किस लिए खाऊँ ? इसलिए मैंने घूमने जाने के लिए दूसरा रास्ता पसन्द कर लिया।

मैंने देखा कि स्वाभिमान की रक्षा चाहनेवाले हिन्दुस्तानियों के लिए दक्षिण अफ्रिका उपर्युक्त देश नहीं है। यह स्थिति किस तरह बदली जा सकती है, इसके विचार में मेरा मन अधिकाधिक व्यस्त रहने लगा। किन्तु अभी मेरा मुख्य धर्म तो दादा अब्दुल्ला के मुकदमे को ही सम्भालने का था।

२१. मुकदमे की तैयारी

दादा अब्दुल्ला का पक्ष मजबूत है। कानून को उनकी मदद करनी ही चाहिए। पर मैंने देखा कि मुकदमा लड़ने में दोनों पक्ष, जो आपस में रिश्तेदार हैं और एक ही नगर के निवासी हैं, बरबाद हो जाएँगे। कोई कह नहीं सकता था कि मुकदमे का अन्त कब होगा। मैंने तो अनुभव किया कि मेरा धर्म दोनों की मित्रता साधना और दोनों रिश्तेदारों में मेल करा देना है। मैंने समझौते के लिए जी-तोड़ मेहनत की।

दोनों पक्षों को प्रसन्नता हुई। दोनों की प्रतिष्ठा बढ़ी। मेरे संतोष की सीमा न रही। मैं सच्ची वकालत सीखा, मनुष्य के अच्छे पहलू को खोजना सीखा और मनुष्य-हृदय में प्रवेश करना सीखा। मैंने देखा कि वकील का कर्तव्य दोनों पक्षों के बीच खुदी हुई खाई को पाटना है। इस शिक्षाने मेरे मन में ऐसी जड़ जमायी कि बीस साल की अपनी वकालत का मेरा अधिकांश समय अपने दफ्तर में बैठकर सैंकड़ों मामलों को आपस में सुलझाने में ही बीता। उसमें मैंने कुछ खोया नहीं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि मैंने पैसा खोया। आत्मा तो खोयी ही नहीं।

२२. इन्सान ने दरखास्त की, भगवान ने इनकार किया

मुकदमे के खतम होने पर मेरे लिए प्रिटोरिया में रहने का कोई कारण न रहा। मैं डरबन गया। वहाँ पहुँचकर मैंने हिन्दुस्तान लौटने की तैयारी की। अब्दुल्ला सेठ मुझे बिना मान-सम्मान के जाने दें, यह संभव न था। उन्होंने मेरे निमित्त से सिडनहैम में एक सामूहिक भोजन का आयोजन किया।

पूरा दिन वही बिताना था। मेरे पास कुछ अखबार पड़े थे। मैं उन्हें पढ़ रहा था। एक अखबार के एक कोने में मैंने एक छोटा-सा संवाद देखा। उसका शीर्षक था: 'इण्डियन फ्रेंचाइज'। इस संवाद का आशय यह या कि हिन्दुस्तानियों को नेटाल की धारासभा के लिए सदस्य चुनने का जो अधिकार है यह छीन लिया जाए। धारासभा में इससे सम्बन्ध रखनेवाले कानून पर बहस चल रही थी। मैं इस कानून से अपरिचित था भोज में सम्मिलित सदस्यों में से किसी को भी हिन्दुस्तानियों का अधिकार छीननेवाले इस बिल की कोई खबर न थी।

मैंने अब्दुल्ला सेठसे पूछा। उन्होंने कहा, "इन बातों को हम क्या जाने ? व्यापार पर कोई संकट आवे तो हमें उसका पता चलता है। किन्तु मुझे तो वापस स्वदेश जाना था, इसलिए मैंने उपर्युक्त विचारों को प्रकट नहीं किया। मैंने अब्दुल्ला सेठ से कहा, "लेकिन अगर यह कानून इसी तरह पास हो गया, तो आप सबको बड़ी मुश्किल में डाल देगा। इसमें हमारे स्वाभिमान की हानि है।"

दूसरे मेहमान इस चर्चा को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। उनमें से एकने कहा, "मैं आपसे सच बात कहूँ ? अगर आप इस स्टीमर से न जाएँ और एकाध महीना रुक जाएँ, तो आप जिस तरह कहेंगे, हम लड़ेंगे |

अब मैं नेटाल छोड़ सकूँ ऐसी मेरी स्थिति नहीं रही। लोगों ने मुझे चारों तरफ से घेर लिया और नेटाल में ही स्थायी रूप से रहने का अत्यन्त आग्रह किया। नेटाल में अपने निवास को सार्थक करने के लिए तो मुझे सार्वजनिक काम में तन्मय हो जाना था। उसके बारे में आंदोलन चलते रहने से ही उपनिवेश मंत्री पर उनका असर पड़ सकता था। इसके लिए

एक संस्था की स्थापना करना आवश्यक मालूम हुआ। इस सम्बन्ध में मैंने अब्दुल्ला सेठ से सलाह की, दूसरे साथियों से मिला, और हमने एक सार्वजनिक संस्था खड़ी करने का निश्चय किया। १८९४ के मई महिने की २२ तारीख को नेटाल इण्डियन काँग्रेस का जन्म हुआ।

२३. तीन पौण्ड का कर

लगभग १८६० में जब नेटाल में बसे हुए गोरों ने देखा कि वहाँ दूख की फसल अच्छी हो सकती है, तो उन्होंने मजदूरों की खोज शुरू की। मजदूर न मिलें, तो न ईख पैदा हो सकती थी और न चीनी ही बन सकती थी। नेटाल के हब्शी यह मजदूरी नहीं कर सकते थे। इस लिए नेटाल निवासी गोरों ने भारत-सरकार के साथ विचार-विमर्श करके हिन्दुस्तानी मजदूरों को नेटाल जाने देने की अनुमति प्राप्त की। उन्हें यह लालच दिया गया कि पाँच साल तक मजदूरी करने का बंधन रहेगा और पांच साल के बाद नेटाल में रहने की छूट रहेगी। उनको जमीन का मालिक बनने का पूरा अधिकार दिया गया था।

हिन्दुस्तानी मजदूरों ने यह लाभ आशा से अधिक दिया। साग-सब्जी खूब बोयी। हिन्दुस्तान की अनेक उत्तम तरकारियाँ पैदा कीं। जो साग-सब्जियाँ वहाँ पहले से पैदा होती थीं उनके दाम सस्ते कर दिये। हिन्दुस्तान से आम लाकर लगाये। पर इसके साथ ही उन्होंने व्यापार भी शुरू कर दिया। घर बनाने के लिए जमीनें खरीद लीं और बहुतेरे लोग मजदूर न रहकर अच्छे जमींदार और मकान-मालिक बन गये। इस तरह मजदूरों में से मकान-मालिक बन जानेवालों के पीछे-पीछे वहाँ स्वतंत्र व्यापारी भी पहुँचे।

गोरे व्यापारी चौंके। जब पहले-पहल उन्होंने हिन्दुस्तानी मजदूरों का स्वागत किया था, तब उन्हें उनकी व्यापार करने की शक्ति का कोई अन्दाज न था। वे किसान के नाते स्वतंत्र रहें, इस हद तक तो गोरों को उस समय कोई आपत्ति न थी, पर व्यापार में उनकी प्रतिद्वन्दिवता उन्हें असह्य जान पड़ी।

हिन्दुस्तानियों को साथ उनके विरोध के भूल में यह चीज थी। उसमें दूसरी चीजें और मिल गयीं। यह विरोध प्राप्त मताधिकार को छीन लेने के रूप में और गिरमिटियों पर कर लगाने के कानून के रूप में प्रकट हुआ।

इस कर के विरुद्ध जोरों की लड़ाई छिड़ी यदि कौम हारकर बैठ जाती, काँग्रेस लड़ाई को भूल जाती और कर को अनिवार्य समझकर उसके आगे झुक जाती, तो वह कर आज तक

गिरिमिटिया हिन्दुस्तानियों से वसूल होता रहता और इसका कलंक स्थानीय हिन्दुस्तानियों को और समूचे हिन्दुस्तान को लगता।

अब मैं दक्षिण अफ्रिका में तीन साल रह चुका था। मैं लोगों को पहचानने लगा था और लोग मुझे पहचानने लगे थे। सन् १८९६ में मैंने छह महिनों के लिए देश जाने की इजाजत माँगी मैंने देखा कि मुझे दक्षिण अफ्रिका में लम्बे समय तक रहना होगा। कहा जा सकता है कि मेरी वकालत ठीक चल रही थी। सार्वजनिक काम में लोग मेरी उपस्थिति की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे; मैं स्वयं भी करता था। इससे मैंने दक्षिण अफ्रिका में सपरिवार रहने का निश्चय किया और उसके लिए देश हो आना ठीक समझा। फिर, मैंने यह भी देखा कि देश जाने से कुछ सार्वजनिक कार्य भी हो सकता है। मुझे लगा कि देश में लोकमत जाग्रत करके यहाँ के भारतीयों के प्रश्न में लोगों की अधिक दिलचस्पी पैदा की जा सकती है।

भाग-५: हिन्दुस्तान की मुलाकात

२४. हिन्दुस्तान में

बम्बई में रूके बिना मैं सीधा राजकोट गया और वहाँ एक पुस्तिका लिखने की तैयारी में लगा। पुस्तिका लिखने और छपाने में लगभग एक महीना बीत गया। उसका आवरण हरा था, इसलिए बाद में वह 'हरी पुस्तिका' के नाम से प्रसिद्ध हुई। उसमें दक्षिण अफ्रिका के हिन्दुस्तानियों की स्थिति का चित्रण मैंने जान-बूझकर नरम भाषा में किया था। दस हजार प्रतियाँ छपायी थीं और उन्हें सारे हिन्दुस्तान के अखबारों और सब पक्षों के प्रसिद्ध लोगों को भेजा था। उसका सारांश विलायत गया और उस सारांश का सारांश फिर रायटर के द्वारा नेटाल पहुँचा। वह तार तो तीन पंक्तियों का था। नेटाल में हिन्दुस्तानियों के साथ होनेवाले व्यवहार का जो चित्र मैंने खींचा था, उसका वह लघु संस्करण था। वह मेरे शब्दों में नहीं था। उसका जो असर हुआ उसे हम आगे देखेंगे। धीरे-धीरे सब प्रमुख पत्रों में इस प्रश्न की विस्तृत चर्चा हुई।

इस पुस्तिका को डाक से भेजने के लिए इसके पैकेट तैयार कराने का काम मुश्किल था, और पैसा देकर कराना खर्चीला था। मैंने सरल युक्ति खोज ली। मुहल्ले के सब लड़कों को मैंने इकट्ठा किया और उनसे सबेरे के दो-तीन घण्टों में से जितना समय वे दे सकें उतना देने के लिए कहा। लड़कों ने इतनी सेवा करना खुशी से स्वीकार किया। अपनी तरफ से मैंने उन्हें अपने पास जमा होनेवाले काम में आये हुए डाक के टिकट और आशीर्वाद देना कबूल किया। लड़कों ने हँसते-खेलते मेरा काम पूरा कर दिया। इस प्रकार छोटे बच्चों को स्वयंसेवक बनाने का यह मेरा पहला प्रयोग था। इन बालकों में से दो आज मेरे साथी हैं।

मैं बम्बई हो आया। खास-खास शहरों में सभायें करके विशेष रूप से लोकमत तैयार करने का मेरा इरादा था। इसी खयाल से मैं वहाँ गया था। बम्बई से मैं पूना गया। और मद्रास से

में कलकते गया। इतने में डरबन से तार मिला। "पार्लियामेण्ट जनवरी में बैठेगी। जल्दी लौटिये।

दिसम्बर के आरंभ में 'कुरलैण्ड' स्टीमर से अपनी धर्मपत्नी, दो लड़कों और अपने स्व. बहनोई के एक मात्र लड़के को लेकर दूसरी बार दक्षिण अफ्रिका के लिए रवाना हुआ। इस स्टीमर के साथ ही दूसरा 'नादरी' स्टीमर भी डरबन के लिए रवाना हुआ। दादा अब्दुल्ला उसके एजेन्ट थे। दोनों स्टीमरों में कुल मिलाकर करीब ८०० हिन्दुस्तानी यात्री रहे होंगे। उनमें आधे से अधिक लोग ट्रान्सवाल जानेवाले थे।

भाग-६: वापस दक्षिण अफ्रिका में

२५. दक्षिण अफ्रिका में तुफान की आगाही

अठारह दिसम्बर के आसपास दोनों स्टीमरों ने लंगर डाले। दक्षिण अफ्रिका के बन्दरगाहों में यात्रियों के स्वास्थ्य की पूरी जाँच की जाती है। यदि रास्ते में किसी को कोई छूतवाली बीमारी हुई होतो, स्टीमर को सूतक में—कवारण्टीन में – रखा जाता है। हमारे बम्बई छोड़ते समय वहाँ प्लेग की शिकायत थी, इसलिए हमें इस बात का डर जरूर था कि सूतक की कुछ बाधा होगी। डॉक्टर आये। जाँच करके उन्होंने पाँच दिन का सूतक घोषित किया, क्योंकि उनकी यह धारणा थी कि प्लेग के कीटाणु तेईस दिन तक जिन्दा रह सकते हैं। इसलिए उन्होंने ऐसा आदेश दिया कि बम्बई छोड़ने के बाद तेईस दिन की अवध पूरी होने तक स्टीमरों को सूतक में रखा जाए।

पर इस सूतक की आज्ञा का हेतु केवल स्वास्थ्य-स्क्षा न था। डरबन के गोरे नागरिक हमें उलटे पैरों लौटा देने का जो आन्दोलन कर रहे थे, वह भी इस आज्ञा के मूल में एक कारण था। दादा अब्दुल्ला की तरफ से हमें शहर में चल रहे इस आंदोलन की खबरें मिलती रहती थीं। गोरे लोग एक के बाद दूसरी विराट सभायें कर रहे थे। एक ओर मुट्ठीभर गरीब हिन्दुस्तानी और उनके इने-गिने अंग्रेजी मित्र थे, दूसती ओर धनबल प्रतिपक्षियों को राज्य का बल भी प्राप्त हो गया था, क्योंकि नेटाल की सरकार ने खुल्लमखुल्ला उनकी मदद की थी।

यात्रियों के मनोरंजन के लिए स्टीमर पर खोलों का प्रबंध किया गया था। मैं आनंद में सम्मिलित हुआ था, पर मेरा दिल तो डरबन में चल रही लड़ाई में ही लगा हुआ था, क्योंकि इस हमले में मध्यबिंदु में था। मुझ पर दो आरोप थे:

१. मैंने हिन्दुस्तान में नेटाल-वासी गोरों की अनुचित निन्दा की थी;

२. मैं नेटाल को हिन्दुस्तानियों से भर देना चाहता था, और इसलिए खासकर नेटाल में बसाने के लिए हिन्दुस्तानियों को 'कुरलैण्ड' और 'नादरी' में भर लाया था।

पर मैं स्वयं बिलकुल निर्दोष था। मैंने किसी को नेटाल आने के लिए ललचाया नहीं था। नादरी' के यात्रियों को मैं पहचानता भी न था। 'कुरलैण्ड' में अपने दो-तीन रिश्तेदारों को छोड़कर बाकी के सैंकड़ो यात्रियों के नामधाम तक मैं जानता न था। मैंने हिन्दुस्तान में नेटाल के अंग्रेजों के विषय में ऐसा एक भी शब्द नहीं कहा, जो मैं नेटाल में कह न चुका था। और जो कुछ मैंने कहा था, उसके लिए मेरे पास काफी प्रमाण थे।

इस प्रकार हमारे दिन बीतते और लम्बे होते गये।

आखिर तेइसवें दिन स्टीमरों को मुक्ति मिली और यात्रियों को उतरने का आदेश मिला।

जहाज धक्के पर लगा। यात्री उतरे। पर मेरे बारे में मि. एस्कम्बने कप्तान से कहलाया था: "गाँधी को और उनके परिवार को शाम के समय उतारियेगा। उनके विरुद्ध गोरे बहुत उत्तेजित हो गये है और उनके प्राण संकट में हैं। पोर्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट मि. टेटम उन्हें शाम को अपने साथ ले जाएँगे।" कप्तानने मुझे इस सन्देश की खबर दी। मैंने तदनुसार चलना स्वीकार किया। लेकिन इस सन्देश को मिले आधा घंटा भी न हुआ था कि इतने में मि. लाटन आये और कप्तान से मिलकर बोले, "यदि मि. गांधी मेरे साथ चलें, तो मैं उन्हें अपनी जिम्मेदारी पर ले जाना चाहता हूँ। स्टीमर के एजेण्ट के वकील के नाते मैं आपसे कहता हूँ कि मि. गांधी के बारे में जो सन्देश आपको मिला है उसके बन्धन से आप मुक्त हैं।" इस प्रकार कप्तान से बातचीत करके वे मेरे पास आये और मुझसे कुछ इस मतलब की बातें कही: "आप को जीवन का डर न हो, तो मैं चाहता हूँ कि श्रीमती गांधी और बच्चे गाड़ी में रुस्तमजी सेठ के घर जाएँ और आप तथा मैं आम रास्ते से पैदल चलें। मुझे यह बिलकुल अच्छा नहीं लगता कि आप

अँधेरा होने पर चुपचाप शहर में दाखिल हो। मेरा खयाल है कि आप का बाल भी बाँका न होगा। अब तो सब कुछ शान्त है। गोरे सब तितर-बितर हो गये हैं। पर कुछ भी क्यों न हो,

मेरी राय है कि आपको छिपे तौर पर शहर में कभी न जाना चाहिए।" मैं सहमत हो गया। मेरी धर्मपत्नी और बच्चे गाड़ी में बैठकर रुस्तमजी सेठ के घर सही-सलामत पहुँच गये। कप्तान की अनुमति लेकर मैं मि. लाटन के साथ उतरा। रुस्तमजी सेठ का घर वहाँ से लगभग दो मील दूर था।

जैसे ही हम जहाज से उतरे, कुछ लड़कों ने मुझे पहचान लिया और वे 'गांधी, गांधी' चिल्लाने लगे तुरन्त ही कुछ लोग इकट्ठा हो गये और चिल्लाहट बढ़ गयी। मि. लाटनने देखा कि भीड़ बढ़ जाएगी, इसलिए उन्होंने रिकशा मँगवाया। मुझे उसमें बैठना कभी अच्छा न लगता था। उस पर सवार होने का मुझे यह पहला ही अनुभव होने जा रहा था। पर लड़के क्यों बैठने देते ? उन्होंने रिकशावाले को धमकाया और वह भाग खड़ा हुआ। हम आगे बढ़े भीड़ भी बढ़ती गयी। खासी भीड़ जमा हो गयी। सबसे पहले तो भीड़वालों ने मुझे मि. लाटन से अलग कर दिया। फिर मुझ पर कंकरों और सड़े अण्डों की वर्षा शुरू हुई। किसी ने मेरी पगड़ी उछाल कर फेंक दी। फिर लातें शुरू हुई। मुझे गश आ गया। मैंने पास के घर की जाली पकड़ ली और दम लिया। वहाँ खड़ा रहना तो सम्भव ही न था। तमाचे पड़ने लगे। इतने में पुलिस अधिकारी की स्त्री, जो मुझे पहचानती थी, उस रास्ते से गुजरी। मुझे देखते ही वह मेरी बगल में आकर खड़ी हो गयी और धूप के न रहते भी उसने अपनी छत्री खोल ली। इससे भीड़ कुछ नरम पड़ी। अब मुझ पर प्रहार करने हों, तो मिसेज एलेंकजेण्डर को बचाकर ही किये जा सकते थे।

इस बीच मुझ पर मार पड़ते देखकर कोई हिन्दुस्तानी नौजवान पुलिस थाणे पर दौड़ गया। सुपरिण्टेण्डेण्ट एलेकजेण्डरने एक टुकडी मुझे घेर कर बचा लेने के लिए भेजी। वह समय पर पहुँची। मेरा रास्ता पुलिस थाने के पास ही होकर जाता था। सुपरिण्टेण्डेन्टने मुझे थाने में आश्रय लेने की सलाह दी। मैंने इनकार किया और कहा, "जब लोगों को अपनी भूल मालूम हो जाएगी, तो वे शान्त हो जाएँगे। मुझे उनकी न्यायबुद्धि पर विश्वास है।" पुलिस के दस्ते के साथ मैं सही सलामत पारसी रुस्तमजी के घर पहुँचा। मेरी पीठ पर छिपी मार

पड़ी थी। एक जगह थोड़ा खून निकल आया था। स्टीमर के डॉक्टर दादा बरजोर वहीं मौजूद थे। उन्होंने मेरी अच्छी सेवा-शुश्रूषा की।

यों भीतर शान्ति थी, पर बाहर गोरों ने घर को घेर लिया था। शाम हो चुकी थी। अँधेरा हो चला था। बाहर हजारों लोग तीखी आवाज में शोर कर रहे थे और 'गांधी को हमें सौंप दो' की पुकार मचा रहे थे परिस्थिति का खयाल करके सुपरिण्टेण्डेण्ट एलेक्जेण्डर वहाँ पहुँच गये थे और भीड़ को धमकी से नहीं, बल्कि उसका मन बहलाकर वश में रख रहे थे। फिर भी वे निश्चिन्त तो नहीं थे। उन्होंने मुझे इस आशय का संदेशा भेजा: "यदि आप अपने मित्र के मकान, माल-असबाब और अपने बाल-बच्चों को बचाना चाहते हों, तो जिस तरह मैं कहूँ उस तरह आप को इस घर से छिपे तौर पर निकल जाना चाहिए।"

मैंने हिन्दुस्तानी सिपाही की वर्दी पहनी। कभी सिर पर भार पड़े तो उससे बचने के लिए माथे पर पीतल की एक तस्तरी रखी और ऊपर से मद्रासी तर्ज का बड़ा साफा बाँधा। साथ में खुफिया पुलिस के दो जवान थे। उनमें से एकने हिन्दुस्तानी व्यापारी की पोशाक पहनी और अपना चेहरा हिन्दुस्तानी की तरह रंग लिया। दूसरे ने क्या पहना, सो मैं भूल गया हूँ। हम बगल की गली में होकर पड़ोस की एक दुकान में पहुँचे और गोदाम में लगी हुई बोरों की थप्पियों को अँधेरे में लाँघते हुए दुकान के दरवाजे से भीड़ में घुस कर आगे निकल गये। गली के नुक्कड़ पर गाड़ी खड़ी थी उसमें बैठाकर मुझे अब उसी थाने में ले गये, जिसमें आश्रय लेने की सलाह सुपरिण्टेण्डेण्ट एलेकझेण्डर ने पहले दी थी। मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट एलेकजेण्डर को और खुफिया पुलिस के अधिकारियों को धन्यवाद दिया।

इस प्रकार जब एक तरफ से मुझे ले जाया जा रहा था, तब दूसरी तरफ सुपरिण्टेण्डेण्ट एलेकझेण्डर भीड़ से गाना गवा रहे थे। उस गीत का अनुवाद यह है: 'चलो, हम गांधी को फाँसी लटका दें, इमली के उस पेड़ पर फाँसी लटका दें।'

जब सही-सलामत थाने पर पहुँच जाने की खबर मिली तो उन्होंने भीड से कहा: "आप का शिकार तो इस दुकान में से सही-सलामत निकल भागा है।" भीड़ में किसी को गुस्सा आया, कोई हँसा, बहुतों ने इस बात को मानने से इनकार किया।

इस पर सुपरिण्टेण्डेण्ट एलेकझेण्डर ने कहा, "तो आप लोग अपने में से जिसे नियुक्त कर दें उसे मैं अन्दर ले जाऊँ और वह तलाश करके देख ले। अगर आप गांधी को ढूँढ निकालें, तो मैं उसे आपके हवाले कर दूँगा। न ढूँढ़ सकें तो आपको बिखर जाना होगा। मुझे यह विश्वास तो है ही कि आप पारसी रुस्तमजी का मकान हरगिज नहीं जलाएँगे और न गांधी के स्त्री-बच्चों को कष्ट पहुँचाएँगे।

भीड़ ने प्रतिनिधि नियुक्त किये। उन्होंने तलाश के बाद उसे निराशाजनक समाचार सुनाये सब सुपरिण्टेण्डेण्ट एलेकझेण्डर की सुझ-बुझ और चतुराई की प्रशंसा करते हुए, पर मन-ही-मन कुछ गुस्सा होते हुए, बिखर गये।

उस समय के उपनिवेश-मंत्री स्व. मि. चेम्बरलेनने तार द्वारा सूचित किया कि मुझ पर हमला करनेवालों पर मुकदमा चलाया जाए और मुझे न्याय दिलाया जाए। मि. एस्कम्ब ने मुझे अपने पास बुलाया। मुझे पहुँची हुई चोट के लिए खेद प्रकट करते हुए उन्होंने कहा, "आप यह तो मानेंगे ही कि आप का बाल भी बाँका हो तो मुझे उससे कभी खुशी नहीं हो सकती। आपने मि. लाटन की सलाह मानकर तुरन्त उतर जाने का साहस किया। आप को ऐसा करने का हक था, पर आपने मेरे संदेश को मान लिया होता, तो यह दुःखद घटना न घटती। अब अगर आप हमला करनेवालों को पहचान सकें, तो मैं उन्हें गिरफ्तार करवाने और उन पर मुकदमा चलाने को तैयार हूँ।

मि. चेम्बरलेन भी यही चाहते हैं।

मैंने जवाब दिया: "मुझे किसी पर मुकदमा नहीं चलाना है। सम्भव है, हमला करनेवालों में से एक-दो को मैं पहचान लूँ, पर उन्हें सजा दिलाने से मुझे क्या लाभ होगा फिर, मैं हमला करनेवालों को दोषी भी नहीं मानता। उन्हें तो यह कहा गया है कि मैंने हिन्दुस्तान में अतिशयोक्तिपूर्ण बातें कहकर नेटाल के गोरों को बदनाम किया है। वे इस बात को मानकर गुस्सा हों, तो इसमें आश्चर्य क्या है ? दोष तो बड़ों का और, मुझे कहने की इजाजत दें तो, आप का माना जाना चाहिए। आप लोगों को सही रास्ता दिखा सकते थे, पर आपने

भी रायटर के तार को ठीक माना और यह कल्पना कर ली कि मैंने अतिशयोक्ति की होगी। मुझे किसी पर मुकदमा नहीं चलाना है। जब वस्तु स्थिति प्रकट होगी और लोगों को पता चलेगा, तो वे खुद पछतायेंगे।"

"तो आप मुझे यह बात लिखकर दे देंगे ? मुझे मि. चेम्बललेन को इस आशय का तार भेजना पड़ेगा। मैं नहीं चाहता कि आप जल्दी में कुछ लिखकर दे दें। मेरी इच्छा ये है कि आप मि. लाटन से और अपने दूसरे मित्रों से सलाह करके जो उचित जान पड़े सो करें। हाँ, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि यदि आप हमला करनेवालों पर मुकदमा नहीं चलाएँगे, तो सब ओर शांति स्थापित करने में मुझे बहुत मदद मिलेगी और आप की प्रतिष्ठा तो निश्चय ही बढ़ेगी।" मैंने जवाब दिया, "इस विषय में मेरे विचार पक्के हो चुके हैं। यह निश्चय समझिये कि मुझे किसी पर मुकदमा नहीं चलाना है, इसलिए मैं आप को यहीं लिखकर दे देना चाहता हूँ।" यह कहकर मैंने आवश्यक पत्र लिखकर दे दिया।

'नेटाल एडवरटाइजर' नामक पत्रकार प्रतिनिधि मुझ से मिल गया था। उसने मुझे कई प्रश्न पूछे थे और उनके उतर में मैं प्रत्येक आरोप का पूरा-पूरा जवाब दे सका था।

इस खुलासे का और हमलावरों पर मुकदमा दायर करने से मेरे इनकार करने का इतना ज्यादा असर पड़ा कि गोरे शरमिन्दा हुए। समाचारपत्रों ने मुझे निर्दोष सिद्ध किया और हुल्लड़ करनेवालों की निन्दा की। इस प्रकार परिणाम में तो मुझे लाभ ही हुआ, और मेरा लाभ मेरे कार्य का ही लाभ था। इससे भारतीय समाज की प्रतिष्ठा बढ़ी और मेरा मार्ग अधिक सरल हो गया। तीन या चार दिन बाद मैं अपने घर गया और कुछ ही दिनों में व्यवस्थित रीति से अपना कामकाज करने लगा।

२६. सादगी

धोबी का खर्च भी ज्यादा मालूम हुआ। इसके अलावा, धोबी निश्चित समय पर कपड़े नहीं लौटाता था। इसलिए दो-तीन दर्जन कमीजों और उतने ही कालरों से भी मेरा काम चल नहीं पाता था। कालर मैं रोज बदलता था। कमीज रोज नहीं तो एक दिन के अन्तर से बदलता था। इससे दोहरा खर्च होता था। मुझे यह व्यर्थ प्रतीत हुआ। अतएव मैंने धुलाई का सामान जुटाया ! धुलाई-कला पर पुस्तक पढ़ी और धोना सीखा। पत्नी को भी सिखाया। काम का कुछ बोझ तो बढ़ा ही, पर नया काम होने से उसे करने में आनन्द आता था।

पहली बार अपने हाथों धोये हुए कालर को तो मैं कभी भूल नहीं सकता। उसमें कलफ अधिक लग गया था और इस्तरी पूरी गरम नहीं थी। तीस पर कालर के जल जाने के डर से इस्तरी को मैंने अच्छी तरह दबाया भी नहीं था। इससे कालर में कड़ापन तो आ गया, पर उसमें से कलझ झड़ता रहता था। ऐसी हालत में मैं कोर्ट गया और वहाँ बारिस्टरों के लिए मजाक का साधन बन गया। पर इस तरह का मजाक सह लेने की शक्ति उस समय भी मुझ में काफी थी।

मैंने सफाई देते हुए कहा, "अपने हाथों कालर धोने का मेरा यह पहला प्रयोग है, इस कारण इसमें से कलफ झड़ता है। मुझे इससे कोई अड़ंचन नहीं होती; तीस पर आप सब लोगों के लिए विनोद की इतनी सामग्री जुटा रहा हूँ, सो घाते में।"

"यहाँ धोबी का खर्च मुझे तो असह्य मालूम होता है। कालर की कीमत के बराबर धुलाई हो जाती है और इतनी धुलाई देने के बाद भी धोबी की गुलामी करनी पड़ती है। इसकी अपेक्षा अपने हाथ से धोना मैं ज्यादा पसंद करता हूँ।"

जिस तरह मैं धोबी की गुलामी से छूटा, उसी तरह नाई की गुलामी से भी छूटने का अवसर आ गया। हजामत तो विलायत जानेवाले सब कोई हाथ से बनाना सीख ही लेते हैं, पर कोई बाल छाँटना भी सीखता होगा, इसका मुझे खयाल नहीं है। एक बार प्रिटोरिया में मैं एक अंग्रेज हजाम की दुकान पर पहुँचा। उसने मेरी हजामत बनाने से साफ इनकार कर दिया

और इनकार करते हुए जो तिरस्कार प्रकट किया, सो घ्याते में रहा। मुझे दुःख हुआ। मैं बाजार पहुँचा। मैंने बाल काटने की मशीन खरीदी और आईने के सामने खड़े रहकर बाल काटे। बाल जैसे-तैसे कट तो गये, पर पीछे के बाल काटने में बड़ी कठिनाई हुई। सीधे तो वे कट ही न पाये। कोर्ट में खूब कहकहे लगे।

"तुम्हारे बाल ऐसे क्यों हो गये हैं ? सिर पर चूहे तो नहीं चढ़ गये थे ?"

मैंने कहा: "जी नहीं, मेरे काले सिरको गोरा हज्जाम कैसे छू सकता है ? इसलिए कैसे भी क्यों न हो, अपने हाथ से काटे हुए बाल मुझे अधिक प्रिय हैं।"

इस उत्तर से मित्रों को आश्चर्य नहीं हुआ। असल में उस हज्जाम का कोई दोष न था। अगर वह काली चमड़ीवालों के बाल काटने लगता तो उसकी रोजी मारी जाती। हम भी अपने अछूतों के बाल ऊँची जाति के हिन्दुओं के हज्जामों को कहाँ काटने देते हैं ? दक्षिण अफ्रिका में मुझे इसका बदला एक नहीं, अनेकों बार मिला है, और चुँकि मैं यह मानता था कि यह हमारे दोष का परिणाम है, इसलिए मुझे इस बात से कभी गुस्सा नहीं आया।

२७. एक पुण्यस्मरण और प्रायश्चित

जब मैं डरबन में वकालत करता था, तब अकसर मेरे मुहर्रिर मेरे साथ रहते थे। उनमें हिन्दू और ईसाई थे अथवा प्रान्त की दृष्टि से कहूँ तो गुजराती और मद्रासी थे। मुझे स्मरण नहीं है कि उनके बारे में मेरे मन में कभी भेदभाव पैदा हुआ हो। एक मुहर्रिर ईसाई था। उसके माता-पिता पंचम जाति के थे।

हमारे घर की बनावट पश्चिमी ढब की थी। उसमें कमरों के अन्दर मोरियाँ नहीं होती—इससे हर एक कमरे में मोरी की जगह पेशाब के लिए खास बरतन रखा जाता है। उसे उठाने का काम नौकर का न था, बल्कि हम पति-पत्नी का था। जो मुहर्रिर अपने को घर का-सा मानने लगते थे तो अपने बरतन खुद उठाते भी थे। यह पंचम कुल में उत्पन्न मुहर्रिर नया था। उसका बरतन हमें ही उठाना चाहिए था। कस्तूरबाई दूसरे बरतन तो उठाती थी, पर इस बर्तन को उठाना उसे असह्य लगा। इससे हमारे बीच कलह हुआ। मेरा उठाना उससे सहा न जाता था और खुद उठाना उसे भारी हो गया था। आँखों से मोती की बूँदे टपकाती, हाथ में बरतन उठाती और अपनी लाल आँखों से मुझे उलाहना देकर सीढियाँ उतरती हुई कस्तूरबाई का चित्र मैं आज भी खींच सकता हूँ। पर मैं तो जितना प्रेमी उतना ही क्रूर पति था। मैं अपने को उसका शिक्षक भी मानता था, इस कारण अपने अंधे प्रेम के वश होकर उसे खूब सताता था।

यों उसके सिर्फ बर्तन उठाकर ले जाने से मुझे संतोष न हुआ। मुझे संतोष तभी होता

जब वह उसे हँसते मुँह से जाती। इसलिए मैंने दो बातें ऊँची आवाज में कहीं। मैं बड़ंबड़ा उठा, "यह कलह मेरे घर में नहीं चलेगा।"

यह वचन कस्तूरबाई को तीर की तरह चुभ गया। वह भड़क उठीः "तो अपना घर अपने पास रखो। मैं यह चली।" मैं उस समय भगवान को भूल बैठा था। मुझ में दया का लेश भी अंश नहीं रह गया था। मैंने उसका हाथ पकड़ा। सीढ़ियों के सामने ही बाहर निकलने का दरवाजा था। मैं उस असह्य अबला को पकड़कर दरवाजे तक खींच ले गया। दरवाजा

आधा खोला। कस्तूरबाई की आँखों से गंगा-यमुना बह रही थीं। वह बोली: "तुम्हें तो शरम नहीं है। लेकिन मुझे है जरा तो शरमाओ। मैं बाहर निकलकर कहाँ जा सकती हूँ ? यहाँ मेरे माँ-बाप नहीं हैं कि उनके घर चली जाऊँ। मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, इसलिए मुझे तुम्हारी डाँट-फटकार सहनी ही होगी। अब शरमाओ और दरवाजा बन्द करो। कोई देखेगा तो दोनों में से एक की भी शोभा नहीं रहेगी।"

मैंने मुँह तो लाल रखा, पर शरमिन्दा जरूर हुआ। दरवाजा बन्द कर दिया। यदि पत्नी मुझे छोड़ नहीं सकती थी, तो मैं भी उसे छोड़कर कहाँ जा सकता था ? हमारे बीच झगड़े तो बहुत हुए हैं, पर परिणाम सदा शुभ ही रहा है। पत्नी ने अपनी अद्भुत सहनशक्ति द्वारा विजय प्राप्त की है।

२८. बोअर-युद्ध

सन् १८९७ से १८९९ के बीच के अपने जीवन के दूसरे अनेक अनुभवों को छोड़कर अब मैं बोअर-युद्ध पर आता हूँ।

इस संबंध के मन्थन-चिन्तन का सूक्ष्म निरीक्षण मैंने 'दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास' में किया है, इसलिए यहाँ नहीं करना चाहता। जिज्ञासुओं को मेरी सलाह है कि वे उस इतिहास को पढ़ जाएँ। यहाँ तो इतना ही कहना काफी होगा कि ब्रिटीश राज्य के प्रति मेरी वफादारी मुझे उस युद्ध में सम्मिलित होने के लिए जबरदस्ती घसीट ले गयी। मैंने अनुभव किया कि जब मैं ब्रिटीश प्रजाजन के नाते अधिकार माँग रहा हूँ, तो उसी नाते ब्रिटोश राज्य की रक्षा में हाथ बँटाना भी मेरा धर्म है।

हमारी इस टुकड़ी में लगभग ग्यारह सौ आदमी थे। उनमें करीब चालीस मुखिया थे। इन दिनों सब को कई बार दिन में बीस-पचीस मील की मंजिल तय करनी पड़ती थी और एक बार तो घायलों को डोली में डालकर इतने मील चलना पड़ा था। जिन घायल योद्धाओं को हमें इस प्रकार उठाकर ले जाना पड़ा, उनमें जनरल बुडगेट बगैरा भी थे। छह हप्तों के बाद हमारी टुकड़ी को विदा दी गयी।

हमारे छोटे-से काम की उस समय तो बड़ी स्तुति हुई। इससे हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा बढ़ी।

२९. कीमती उपहार

लड़ाई के काम से मुक्त होने के बाद मैंने अनुभव किया कि अब मेरा काम दक्षिण अफ्रिका में नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान में है। देश का मित्र वर्ग भी देश लौट आने के लिए बराबर आग्रह करता रहता था। मुझे भी लगा कि देश जाने से मेरा उपयोग अधिक हो सकेगा। मैंने साथियों के सामने मुक्त होने की इच्छा प्रकट की। बड़ी कठिनाई से एक शर्त के साथ वह स्वीकृत हुई। शर्त यह थी कि यदि एक वर्ष के अन्दर कौम को मेरी आवश्यकता मालूम हुई, तो मुझे वापस दक्षिण अफ्रिका पहुँचना होगा, मुझे यह शर्त कड़ी लगीं। मित्रों की बात को मैं ठुकरा नहीं सकता था। जगह-जगह मानपत्र समर्पण की सभायें हुई और हर जगह से कीमती भेटें मिलीं। भेटों में सोने-चांदी की चीजें तो थीं ही, पर हीरे की चीजें भी थी।

जिस शामको इनमें से मुख्य भेटे मिली थीं, वह रात मैंने पागल की तरह जाकर बितायी। मैं अपने कमरे में चक्कर काटता रहा, पर उलझन किसी तरह सुलझती न थी। सैंकडों की कीमत के उपहारों को छोड़ना कठिन मालूम होता था; रखना उससे भी अधिक कठिन लगता था।

मन प्रश्न करता: मैं शायद भेंटों को पचा पाऊँ, पर मेरे बच्चों का क्या होगा ? स्त्री का क्या होगा ? उन्हें शिक्षा तो सेवा की मिलती थी। उन्हें हमेशां समझाया जाता था कि सेवा के दाम नहीं लिए जा सकते।

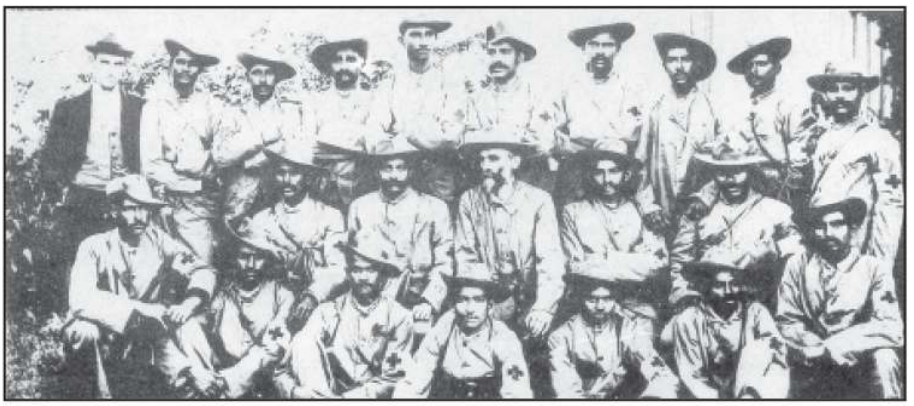

'इन्डियन ऐम्ब्युलन्स कोर्प्स' की वर्दी में

मैं घर में कीमती गहने वगैरा रखता नहीं था। सादगी बढ़ती जा रही थी। ऐसी स्थिति में सोने की घड़ियों का उपयोग कौन करता ? सोने की जंजीरें और हीरे की अंगूठियाँ कौन पहनता ? मैं उस समय भी गहनों-गांठों का मोह छोड़ने का उपदेश औरों को दिया करता था। अब इन गहनों और जवाहरात का मैं क्या करता ?

मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि मुझे ये चीजें रखनी ही नहीं चाहिए। पारसी रुस्तमजी आदि को इन गहनों का ट्रस्टी नियुक्त करके उनके नाम लिखे जानेवाले पत्र का मसविदा मैंने तैयार किया, और सबेरे स्त्री-पुत्रादि से सलाह करके अपना बोझ हलका करने का निश्चय किया।

मैं यह जानता था कि धर्मपत्नी को समझाना कठिन होगा। बच्चों को समझाने में जरा भी कठिनाई नहीं होगी, इसका मुझे विश्वास था। अतः उन्हें इस मामले में वकील बनाने का मैंने निश्चय किया।

लड़के तो तुरन्त समझ गये। उन्होंने कहा, "हमें इन गहनों की आवश्यकता नहीं है। हमें ये सब लौटा ही देने चाहिए। और जीवन में कभी हमें इन वस्तुओं की आवश्यकता हुई, तो क्या हम स्वयं न खरीद सकेंगे ?" मैं खुश हुआ। मैंने पूछा, "तो तुम अपनी माँ को समझाओगे न ?"

"जरूर-जरूर। वह काम हमारा समझिये। उसे कौन से गहने पहनने हैं ? वह तो हमारे लिए ही रखना चाहती है। हमें उनकी जरूरत नहीं है, फिर वह हठ क्यों करेगी ?"

पर काम जितना सोचा था उससे अधिक कठिन सिद्ध हुआ।

"भले आप को जरूरत न हो और आपके लड़कों को भी न हो। बच्चों को तो जिस रास्ते लगा दो, उसी रास्ते वे लग जाते हैं। भले मुझे न पहनने दें, पर मेरी बहुओं का क्या होगा? उनके तो ये चीजें काम आएँगी न ? और कौन जानता है कल क्या होगा ? इतने प्रेम से दी गयी चीजें वापस नहीं की जा सकतीं।

पत्नी की वाग्धारा चली और उसके साथ अश्रुधारा मिल गयी। बच्चे दृढ़ रहे। मुझे तो डिगना था ही नहीं। बहुत-सी बातों में मैं जैसे-तैसे कस्तूरबा की सहमति प्राप्त कर सका। १८९६ में और १९०१ में मिली हुई भेटें मैंने लौटा दीं। उनका ट्रस्ट बना और सार्वजनिक काम के लिए उनका उपयोग मेरी अथवा ट्रस्टियों की इच्छा के अनुसार किया जाए, इस शर्त के साथ वे बैंक में रख दी गयीं।

अपने इस कार्य पर मुझे कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ। दिन बीतने पर कस्तूरबा को भी इसके औचित्य की प्रतीति हो गयी। इससे हम बहुत से लालचों से बच गये हैं।

मेरा यह मत बना है कि सार्वजनिक सेवक के लिए नीजि भेंटे नहीं हो सकती।

भाग-७: देश में

३०. मेरा पहला काँग्रेस

हिन्दुस्तान पहुँचने पर थोड़ा समय मैंने घूमने-फिरने में बिताया। यह सन् १९०१ का जमाना था। उस साल की काँग्रेस कलकते में होनेवाली थी दीनशा एदलजी वाच्छा उसके अध्यक्ष थे। मुझे काँग्रेस में तो जाना था ही। काँग्रेस का यह मेरा पहला अनुभव था।

मैंने किसी स्वयंसेवक से पूछा, "मुझे कहाँ जाना चाहिए ?" वह मुझे रिपन कॉलेज ले गया। वहाँ बहुत से प्रतिनिधि ठहराये गये थे। स्वयं सेवक एक-दूसरे से टकराते रहते थे। जो काम जिसे सौंपा जाता, वह स्वयं उसे नहीं करता था। वह तुरन्त दूसरे को पुकारता था। दूसरा तीसरे को बेचारा प्रतिनिधि तो न तीन में होता, न तेरह में।

गंदगी की हद नहीं थी। चारों तरफ पानी ही पानी फैल रहा था। पारवाने कम थे। उनकी दुर्गन्ध की याद आज भी मुझे हैरान करती है। मैंने एक स्वयंसेवक को यह सब दिखाया। उसने साफ इनकार करते हुए कहा, "यह तो भंगी का काम है।" मैंने झाड़ू माँगा। वह मेरा मुँह ताकता रहा। मैंने झाड़ू खोज निकाला। पाखाना साफ किया। पर यह तो मेरी अपनी सुविधा के लिए हुआ। भीड़ इतनी ज्यादा थी और पाखाने इतने कम थे कि हर बार के उपयोग के बाद उनकी सफाई होनी जरूरी थी। यह मेरी शक्ति के बाहर की बात थी। इसलिए मैंने अपने लायक सुविधा करके संतोष माना।

काँग्रेस के अधिवेशन को एक-दो दिन की देर थी। मैंने निश्चय किया था कि काँग्रेस के कार्यालय में मेरी सेवा स्वीकार की जाए, तो सेवा करूँ और अनुभव लूँ। श्री भूपेन्द्रनाथ बसु और श्री घोषाल मंत्री थे। मैं भूपेन्द्रबाबू के पासपहुँचा और सेवा की माँग की। उन्होंने मेरी ओर देखा और बोले: "मेरे पास तो कोई काम नहीं है, पर शायद मि. घोषाल आपको कुछ काम दे सकेंगे। उनके पास जाइये।"

मैं घोषाल बाबू के पास गया। उन्होंने मुझे ध्यान से देखा और जरा हँसकर मुझसे पूछा: "मेरे पास तो क्लर्क का काम है, आप करेंगे ?"

मैंने उत्तर दिया: "अवश्य करूँगा। मेरी शक्ति से बाहर न हो, ऐसा हर काम करने के लिए मैं आपके पास आया हूँ।"

घोषाल बाबू के बटन भी "बैरा" लगाता था। यह देखकर 'बैरे' का काम मैंने ही ले लिया। मुझे वह पसंद था। बड़ों के प्रति मेरे मन में बहुत आदर था। जब वे मेरी वृत्ति समझ गये, तो अपनी नीजि सेवा के सारे काम मुझसे लेने लगे। बटन लगाते समय मुझे मुसकराकर देखने लगे। मुझे जो लाभ हुआ, उसकी तो कीमत आँकी ही नहीं जा सकती।

कुछ ही दिनों में मुझे काँग्रेस की व्यवस्था का ज्ञान हो गया। कई नेताओं से भेंट हुई। सर फीरोजशाह ने मेरा प्रस्ताव लेने की स्वीकृति तो दी थी, पर उसे काँग्रेस की विषय – निर्वाचिनी समिति में कौन प्रस्तुत करेगा, कब करेगा, यह सोचता हुआ मैं समिति मैं बैठा रहा। हरएक प्रस्ताव पर लम्बे-लम्बे भाषण होते थे, सब अंग्रेजी में। हरएक के साथ प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम जुड़े होते थे। ज्यों-ज्यों रात बीतती जाती थी, त्यों-त्यों मेरा दिल धड़कता जाता था। सब कोई भागने की तैयारी में थे। रात के ग्यारह बज गये थे। मुझ में बोलने की हिम्मत न थी। मैं गोखले से मिल चुका था और उन्होंने मेरा प्रस्ताव देख लिया था। उनकी कुर्सी के पास जाकर मैंने धीरे से कहा: "मेरे लिए कुछ कीजियेगा।"

सर फीरोजशाह बोले: "कहिये, सब काम निपट गया न ?"

गोखले बोल उठे: "दक्षिण अफ्रिका का प्रस्ताव तो बाकी ही है। मि. गांधी कबसे बैठे राह देख रहे हैं।"

सर फीरोजशाह ने पूछा: "आप उस प्रस्ताव को देख चुके हैं ?"

"हाँ।"

"आपको वह पसन्द आया ?"

"काफी अच्छा है।"

"तो गांधी, पढ़ो।"

मैंने काँपते हुए प्रस्ताव पढ़ सुनाया।

गोखले ने उसका समर्थन किया।

सब बोल उठे, "सर्व-सम्मति से पास।"

वाच्छा बोले, "गाँधी, तुम पाँच मिनट लेना।"

इस दृश्य से मुझे प्रसन्नता न हुई। किसी ने भी प्रस्ताव को समझने का कष्ट नहीं उठाया। सब जल्दी में थे। गोखले ने प्रस्ताव देख लिया था, इसलिए दूसरों को देखने-सुनने की आवश्यकता प्रतीत न हुई।

फिर भी काँग्रेस में मेरा प्रस्ताव पास हुआ, यह बात ही मेरे आनन्द के लिए पर्याप्त थी। जिस पर काँग्रेस की मुहर लग गयी उस पर सारे भारत की मुहर है, यह ज्ञान किस के लिए पर्याप्त न होगा ?

३१. बम्बई में स्थिर हुआ ?

गोखले की बड़ी इच्छा थी कि मैं बम्बई में बस जाऊँ, वहाँ बारिस्टर का धन्धा करूँ और उनके साथ सार्वजनिक सेवा में हाथ बँटाऊँ।

मैने देखा कि मेरा धंधा आर्थिक दृष्टि से मेरी अपेक्षा से अधिक अच्छा चल निकला। दक्षिण अफ्रिका के मुवक्किल मुझे कुछ-न-कुछ काम देते रहते थे। मुझे लगा कि उससे खर्च सरलता-पूर्वक चल जाएगा।

मैंने सुस्थिर होने का निश्चय किया और थोड़ी स्थिरता अनुभव की कि अचानक दक्षिण अफ्रिका का तार मिला: "चेम्बरलेन यहाँ आ रहे हैं, आप को आना चाहिए।" मुझे अपने वचन का स्मरण तो था ही। मैंने तार दिया: मेरा खर्च भेजिये, मैं आने को तैयार हूँ।" उन्होंने तुरन्त रुपये भेज दिये और मैं दफतर समेट कर रवाना हो गया।

भाग-८: वापस दक्षिण अफ्रिका में

३२. फिर दक्षिण अफ्रिका

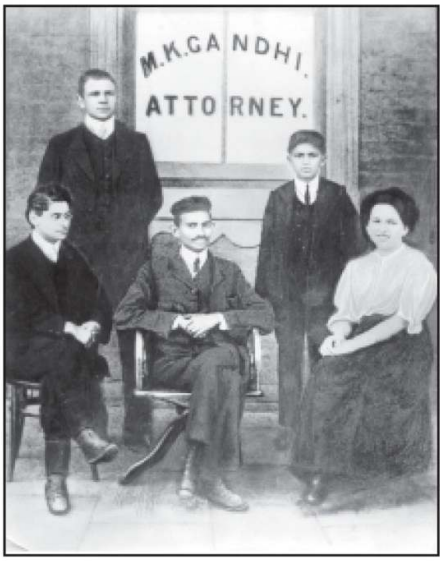

अपनी ऑफिस जोहानिस्बर्ग में, साऊथ अफ्रिका

यह नहीं कहा जा सकता कि मैं डरबन एक दिन भी पहले पहुँचा। मेरे लिए वहाँ काम तैयार ही था। मि. चेम्बरलेन के पास डेप्युटेशन के जाने की तारीख निश्चित हो चुकी थी। मुझे उनके सामने पढ़ा जानेवाला प्रार्थना-पत्र तैयार करना था और डेप्युटेशन के साथ जाना था।

मि. चेम्बरलेन से भारतीय प्रतिनिधियों को नीचे लिखा ठंडा जवाब मिला :

"आप तो जानते हैं कि उत्तरदायी उपनिवेशों पर साम्राज्य-सरकार का अंकुश नाम मात्र का ही है। आपकी शिकायतें तो सच्ची जान पड़ती है। मुझसे जो हो सकेगा, मैं करूँगा। पर आप को जिस तरह भी बने, यहाँ के गोरों को रिझाकर रहना है।"

जवाब सुनकर प्रतिनिधि ठंडे हो गये। मैं निराश हो गया। 'जब जागे तभी सबेरा' मानकर फिर से श्री गणेश करना होगा, यह बात मेरे ध्यान में आ गयी और साथियों को मैंने समझा दी।

मैंने कहा: "सच तो यह है कि जिस काम के लिए मुझे बुलाया गया था, वह अब पूरा हुआ माना जाएगा। पर मैं मानता हूँ कि आपके मुझे छुट्टी दे देने पर भी अपने बसभर मुझे ट्रान्सवाल से हटना नहीं चाहिए। मेरा काम अब नेटाल से नहीं, बल्कि यहाँ से चलना चाहिए। एक साल के अन्दर वापस जाने का विचार मुझे छोड़ देना चाहिए और यहाँ की वकालत की सनद हासिल करनी चाहिए। इस नये विभाग से निबट लेने की हिम्मत मुझ

में है। यदि हमने मुकाबला न किया तो समाज लुट जाएगा और शायद यहाँ से उसके पैर भी उखड़ जाएँगे।

इस प्रकार मैंने चर्चा चलायी। प्रिटोरिया और जोहानिसबर्ग में रहनेवाले भारतीय नेताओं से विचार-विमर्श करके अन्त में जोहानिसबर्ग में दफतर रखने का निश्चय हुआ।

३३. गीता का अभ्यास

गीताजी पर मुझे प्रेम और श्रद्धा तो थी ही। अब उसकी गहराई में उतरने की आवश्यकता प्रतीत हुई। मेरे पास एक-दो अनुवाद थे। उनकी सहायता से मैंने मूल संस्कृत समझ लेने का प्रयत्न किया और नित्य एक-दो श्लोक कण्ठ करने का निश्चय किया।

प्रातः दातुन और स्नान के समय का उपयोग गीता के श्लोक कंठ करने में किया। दातुन में पन्द्रह और स्नान में बीस मिनट लगते थे। सामने की दीवार पर गीता के श्लोक लिखकर चिपका देता था और आवश्यकतानुसार उन्हें देखता तथा गोखता जाता था। इस बीच पिछले कण्ठ किये हुए श्लोकों को भी मैं एक बार दोहरा जाता था। इस प्रकार तेरह अध्याय तक कण्ठ करने की बात मुझे याद है।

वह मेरे लिए धार्मिक कोश का काम देने लगी। जिस प्रकार नये अंग्रेजी शब्दों के हिज्जों या उनके अर्थ के लिए मैं अंग्रेजी शब्दकोश देखता था, उसी प्रकार आचार-संबंधी कठिनाइयों और उसकी अटपटी समस्याओं को मैं गीताजी से हल करता था। उसके अपरिग्रह, समभाव आदि शब्दों ने मुझे पकड़ लिया। मैंने रेवाशंकर भाई को इन आशय का पत्र लिख भेजा कि बीमे की पॉलिसी बन्द कर दें। कुछ रकम वापस मिले तो ले लें, न मिले तो भरे हुए पैसों को गया समझ लें। बच्चों की और स्त्री की रक्षा उन्हें और हमें पैदा करनेवाला ईश्वर करेगा। पितृतुल्य भाई को लिखा: "आज तक तो मेरे पास जो बचा वह मैंने आपको अर्पण किया। अब मेरी आशा आप छोड़ दीजिए। अब जो बचेगा सो यहीं हिन्दुस्तानी समाज के हित में खर्च होगा।"

३४. एक पुस्तक का चमत्कारी प्रभाव

पोलोक तो भेरी सब बातें जानने लगे ही थे। वे मुझे छोड़ने स्टेशन तक आये और यह कहकर कि "यह पुस्तक रास्ते में पढ़ने योग्य है; आप इसे पढ़ जाइये, आपको पसन्द आयेगी।" उन्होंने रस्किन की 'अन्टु धिस लास्ट' पुस्तक मेरे हाथ में रख दी।

इस पुस्तक को हाथ में लेने के बाद मैं छोड़ ही न सका। इसने मुझे पकड़ लिया। जोहानिसबर्ग से नेटाल का रास्ता लगभग चौबीस घंटों का था। ट्रेन शाम को डरबन पहुँचती थी। पहुँचने के बाद मुझे सारी रात नींद न आयी। मैंने पुस्तक में सूचित विचारों को अमल में लाने का इरादा किया।

और इस कारण उसने मुझ पर अपना साम्राज्य झमाया और मुझसे उसमें दिये गये विचार पर अमल करवाया।

मैं 'सर्वोदय' के सिद्धान्तों को इस प्रकार समझा हूँ :

(१) सबकी भलाई में हमारी भलाई निहित है।

(२) वकील और नाई दोनों के काम की किमत एकसी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का अधिकार सब को एक समान है।

(३) सादा मेहनत-मजदूरी का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली चीज मैं जानता था। दूसरी को मैं धुँधले रूप में देखता था। तीसरी का मैंने कभी विचार ही नहीं किया था। 'सर्वोदय' ने मुझे दिये की तरह दिखा दिया की पहली चीज में दूसरी दोनों चीजें समायी हुई हैं। सवेरा हुआ और मैं इस सिद्धान्तों पर अमल करने के प्रयत्न में लगा।

३५. फीनिक्स की स्थापना

सबेरे सबसे पहले तो मैंने बेस्ट से बात की। मुझ पर 'सर्वोदय' का जो प्रभाव पड़ा था, वह मैंने उन्हें सुनाया और सुझाया कि 'इण्डियन ओपीनियन' को एक खेत पर ले जाना चाहिए। वहाँ सब अपने खान-पान के लिए आवश्यक खर्च समान रूप से लें। सब अपने-अपने हिस्से की खेती करें और बाकी के समय में 'इण्डियन ओपीनियन' का काम करें। वेस्ट ने इस सुझाव को स्वीकार किया। हरएक के भोजन आदि का खर्च कम से कम तीन पौण्ड हो ऐसा हिसाब बैठाया। इसमें गोरे-काले का भेद नहीं रखा गया था।

इस प्रकार सन् १९०४ में फीनिक्स की स्थापना हुई और अनेक विड़म्बनाओं के बीच भी फीनिक्स संस्था तथा 'इण्डियन ओपीनियन' दोनों अब तक टीके हुए हैं।

अब जल्दी ही हिन्दुस्तान जाने की अथवा वहाँ जाकर स्थिर होने की आशा मैंने छोड़ दी थी। मैं तो पत्नी को एक साल का आश्वासन देकर वापस दक्षिण अफ्रिका आया था। साल तो बीत गया, पर मेरे वापस लौटने की संभावना दूर चली गई। अतएव मैंने बच्चों को बुला लेने का निश्चय किया।

३६. 'जुलू-विद्रोह'

मैं कुछ स्थिर-सा होने लगा था कि इसी बीच एक अनसोची घटना घटी। अखबारों में यह खबर पढ़ने को मिली कि नेटाल में जुलू 'विद्रोह' हुआ है। जुलू लोगों से मेरी कोई दुश्मनी न थी। उन्होंने एक भी हिन्दुस्तानी का नुकसान नहीं किया था। 'विद्रोह' शब्द के औचित्य के विषय में भी मुझे शंका थी। किन्तु उन दिनों मैं अंग्रेजी सल्तनत को संसार का कल्याण करनेवाली सल्तनत मानता था। नेटाल पर संकट आने पर उसके पास रक्षा के लिए स्वयंसेवकों की सेना थी।

मैं अपने को नेटालवासी मानता था और नेटाल के साथ मेरा निकट सम्बन्ध तो था ही। अतएव मैंने गवर्नर को पत्र लिखा कि यदि आवश्यकता हो तो घायलों की सेवा शुश्रूषा करनेवाले हिन्दुस्तानियों की एक टुकड़ी लेकर मैं सेवा के लिए जाने को तैयार हूँ। तुरन्त ही गवर्नर का स्वीकृति-सूचक उत्तर मिला।

डरबन पहुँचने पर मैंने आदमियों की माँग की। स्वाभिमान की रक्षा के लिए और अधिक सुविधा के साथ काम कर सकने के लिए तथा वैसी प्रथा होने के कारण चिकित्सा-विभाग के मुख्य पदाधिकारी ने मुझे 'सार्जण्ट मेजर' का मुदती पद दिया और मेरी पसन्द के अन्य तीन साथियों को 'सार्जण्ट' का और एक को 'कोपेरिल' का पद दिया। वरदी भी सरकार की ओर से ही मिली। मैं यह कह सकता हूँ कि इस टुकड़ी ने छह सप्ताह तक सतन सेवा की।

जब हमारे हिस्से मुख्यतः जुलू घायलों की शुश्रूषा करने का काम आया, तो मैं बहुत खुश हुआ। वहाँ के डॉक्टर अधिकारी ने हमारा स्वागत किया। उसने कहा, "गोरों में से कोई इन घायलों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए तैयार नहीं होता। मैं अकेला किस-किस की सेवा करूँ ? इनके घाव सड़ रहे हैं। अब आप आये हैं, इसे मैं इन निर्दोष लोगों पर ईश्वर की कृपा ही समझता हूँ।"

३७. कस्तूरबाई की दृढ़ता।

एक डॉक्टर मित्रने शस्त्रक्रिया करा लेने की सलाह दी थी। थोड़ी आनाकानी के बाद पत्नी ने शस्त्रक्रिया कराना स्वीकार कर लिया। उसका शरीर बहुत ही क्षीण हो गया था। डॉक्टर ने बिना क्लोरोफार्म के शस्त्रक्रिया की। शस्त्रक्रिया के समय पीड़ा बहुत हो रही थी, पर जिस धीरज से कस्तूरबाई ने उसे सहन किया उससे मैं आश्चर्यचकित हो गया। शस्त्रक्रिया निर्विघ्न पूरी हो गयी। डॉक्टर ने और उनकी पत्नी ने कस्तूरबाई की अच्छी सार-संभाल की। यह घटना डरबन में हुई थी। जोहानिसबर्ग जाने की अनुमति दे दी।

कुछ ही दिन बाद खबर मिली कि कस्तूरबाई का शरीर बिलकुल सुघर नहीं रहा है और वह बिछौना छोड़कर उठ-बैठ भी नहीं सकती एकबार बेहोश भी हो चुकी थी। डॉक्टर जानते थे कि मुझसे पूछे बिना औषधि या अन्न के रूप में कस्तूरबाई को शराब अथवा माँस नहीं दिया जा सकता। डॉक्टर ने मुझे जोहानिसबर्ग में टेलिफोन किया: "मैं आपकी पत्नी को माँस का शोखा अथवा 'बीफ-टी' देने की जरूरत समझता हूँ। मुझे इजाजत मिलनी चाहिए।" मैंने उत्तर दिया, "मैं यह इजाजत नहीं दे सकता। किन्तु कस्तुरबाई स्वतंत्र है। उससे पूछने-जैसी स्थिति हो तो पूछिये और वह लेना चाहे तो जरूर दीजिए।" ऐसे मामलों में मैं बीमार से कुछ पूछना पसंद नहीं करता। स्वयं आपका यहाँ आना जरूरी है। यदि आप मैं जो चाहूँ सो खिलाने की छूट मुझे न दें, तो मैं आपकी स्त्री के लिए जिम्मेदार नहीं।"

मैंने उसी दिन डरबन की ट्रेन पकड़ी। डरबन पहुँचा। डाक्टर ने मुझसे कहा, "मैंने तो शोरवा पिलाने के बाद ही आपको टेलिफोन किया था।"

मैंने कहा, 'डॉक्टर, मैं इसे दगा समझता हूँ।"

डॉक्टर ने दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया, "दवा करते समय मैं दगा-वगा नहीं समझता। हम डॉक्टर लोग ऐसे समय रोगी को अथवा उसके संबंधियों को धोखा देने में पुण्य समझते हैं। हमारा धर्म तो किसी भी तरह रोगी को बचाना है।"

मुझे बहुत दुःख हुआ। पर मैं शान्त रहा। डॉक्टर मित्र थे, सज्जन थे। उन्होंने और उनकी पत्नी ने मुझ पर उपकार किया था। पर मैं उक्त व्यवहार सहन करने के लिए तैयार न था।

"डॉक्टर साहब, अब स्थिति स्पष्ट कर लीजिए। कहिये, आप क्या करना चाहते हैं ? मैं अपनी पत्नी को उसकी इच्छा के बिना माँस नहीं खिलाने दूँगा। माँस न लेने के कारण उनकी मृत्यु हो जाए, तो मैं उसे सहने के लिए तैयार हूँ।"

डॉक्टर बोले, "आपकी फिलासफी मेरे घर में तो हरगिज नहीं चलेगी। मैं आपसे कहता हूँ कि जब तक अपनी पत्नी को आप मेरे घर में रहने देंगे, तब तक मैं उसे अवश्य ही माँस अथवा जो कुछ भी देना उचित होगा, दूँगा। यदि यह स्वीकार न हो तो आप अपनी पत्नी को ले जाइएँ। मैं अपने ही घर में जान-बूझकर उसकी मृत्यु नहीं होने दूँगा।"

मेरा खयाल है कि उस समय मेरा एक लड़का मेरे साथ था। उसने कहा, "आप की बात मुझे मंजूर है। बा को माँस तो दिया ही नहीं जा सकता। फिर मैं कस्तूरबाई के पास गया। वह बहुत अशक्त थी। उससे कुछ भी पूछना मेरे लिए दुःखदायी था, किन्तु धर्म समझकर मैंने उसे थोड़े में उपर की बात कह सुनाई। उसने दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया: "मैं माँस का शोरवा नहीं लूँगी। मनुष्य की देह बार-बार नहीं मिलती। चाहे आपकी गोद में मैं मर जाऊँ, पर अपनी इस देह को भ्रष्ट तो नहीं होने दूँगी।" जितना मैं समझा सकता था, मैंने समझाया और कहा, "तुम मेरे विचारों का अनुसरण करने के लिए बँधी हुई नहीं हो।" हमारी जान-पहचान के कई हिन्दु दवा के लिए माँस और मद्य लेते थे, इसकी भी मैंने बात की। पर वह टस-से-मस न हुई और बोली: "मुझे यहाँ से ले चलिये।"

मैं बहुत प्रसन्न हुआ। ले जाने के विचार से घबरा गया। पर मैंने निश्चय कर लिया। स्टेशन दूर था। डरबन से फीनिक्स तक रेल का और फीनिक्स से लगभग ढ़ाई मिल का पैदल रास्ता था। खतरा काफी था, पर मैंने माना कि भगवान मदद करेगा। एक आदमी को पहले से फीनिक्स भेज दिया। फीनिक्स में हमारे पास "हैमक" था। तो बीमार उसमें आराम से झूलता रह सकता है। मैंने वेस्ट को खबर भेजी थी कि वै हैमक, एक बोतल गरम दूध, एक

बोतल गरम पानी और छह आदमियों को साथ लेकर स्टेशन पर आ जाएँ। दूसरे ट्रेन के छूटने का समय होने पर मैंने रिक्शा मँगवाया। और उसमें, इस खतरनाक हालत में, पत्नी को बैठाकर मैं रवाना हो गया।

मुझे पत्नी को हिम्मत नहीं बँधानी पड़ी; उलटे उसीने मुझे हिम्मत बँधाते हुए कहा, "मुझे कुछ नहीं होगा, आप चिन्ता न कीजिए।"

हड्डियों के इस ढोंचे में वजन तो कुछ रह ही नहीं गया था। खाया बिलकुल नहीं जाता था। ट्रेन के डिब्बे तक पहुँचने में स्टेशन के लंबे-चौड़े प्लेटफार्म पर दूर तक चलकर जाना पड़ता था। वहाँ तक रिक्शा नहीं जा सकता था। मैं उसे उठाकर डिब्बे तक ले गया। फीनिक्स पहुँचने पर तो वह झोली आ गयी थी। उसमें बीमार को आराम से ले गये। वहाँ केवल पानी के उपचार से धीरे-धीरे कस्तूरबाई का शरीर पुष्ट होने लगा।

३८. घर में सत्याग्रह

यद्यपि उक्त शस्त्रक्रिया के बाद कस्तूरबाई का रक्तस्त्राव थोड़े समय के लिए बन्द हो गया था, पर अब वह फिर शुरू हो गया और किसी प्रकार बन्द ही न होता था। यद्यपि पत्नी को मेरे उपचारों पर विशेष श्रद्धा नहीं थी, तथापि उनके लिए तिरस्कार भी नहीं था। दूसरी दवा करने का आग्रह न था। मैंने उसे नमक और दाल छोड़ने के लिए मनाना शुरू किया। बहुत मनाने पर भी, अपने कथन के समर्थन में कुछ-न-कुछ पढ़कर सुनाने पर भी, वह मानी नहीं। आखिर उसने कहा: "दाल और नमक छोड़ने को तो कोई आपसे कहे, तो आप भी न छोड़ेंगे।" मुझे दुःख हुआ और हर्ष भी हुआ। मुझे अपना प्रेम ऊँडेलने का अवसर मिला। उसके हर्ष में मैंने तुरन्त ही कहा, "तुम्हारा यह खयाल गलत है। मुझे बीमारी हो और वैद्य इस चीज को या दूसरी किसी चीज को छोड़ने के लिए कहे, तो मैं अवश्य छोड़ दूँ। लेकिन जाओ, मैंने तो एक साल के लिए दाल और नमक दोनों छोड़े। तुम छोड़ो या न छोड़ो, यह अलग बात है।"

पत्नी को बहुत प्रश्चात्ताप हुआ। वह कह उठी, "मुझे माफ कीजिए। आप का स्वभाव जानते हुए भी मैं कहते कह गयी। अब मैं दाल और नमक नहीं खाऊँगी, लेकिन आप अपनी बात लौटा ले। यह तो मेरे लिए बहुत बड़ी सजा हो जाएगी।"

मैंने कहा, "अगर तुम दाल और नमक छोड़ोंगी, तो अच्छा ही होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ होगा। पर मैं ली हुई प्रतिज्ञा वापस नहीं ले सकूँगा। मुझे तो इससे लाभ ही है। मनुष्य किसी भी निमित्त से संयम क्यों न पाले, उसमें उसे लाभ ही है। अतएव तुम मुझ से आग्रह न करो। फिर मेरे लिए भी यह एक परीक्षा हो जाएगी और इन दो पदार्थों को छोड़ने का जो निश्चय तुमने किया है, इस पर दृढ़ रहने में तुम्हें मदद मिलेगी।" इसके बाद मुझे उसे मनाने की ज़रूरत तो रही ही नहीं।

"आप बहुत हठीले हैं। किसी की बात मानते ही नहीं।" कहकर और अंजलि-भर आँसू बहाकर वह शान्त हो गयी। मैं इसे सत्याग्रह का नाम देना चाहता हूँ और इसको अपने जीवन की मधुर स्मृतियों में से एक मानता हूँ।

३९. सत्याग्रह का महत्त्व

बिल सरकारी गजट में प्रकाशित हुआ साथ में जूलूओं का विद्रोह जाग उठा। फिनिक्स के सब मित्रों से मिल कर मैं तुरन्त जोहानिसबर्ग पहुँच गया। वहाँ ऑफिस में मैंने ऊपर बताये एशियाटिक बिल का मसौदा पढ़ा। २२ अगस्त, १९०६ को प्रकाशित हुआ ट्रान्सवाल सरकार का वह असाधारण गजट ऑफिस से मैं घर ले गया, जिसमें बिल का मसौदा छपा था। जैसे जैसे मैं उस बिल की धाराएँ पढ़ता गया, वैसे वैसे मैं काँपता गया। उसमें मैं हिन्दुस्तानियों के प्रति द्वेष और घृणा के सिवा दूसरा कुछ नहीं देख सका।

ट्रान्सवाल में रहने का अधिकार रखनेवाले प्रत्येक हिन्दुस्तानी पुरुष, स्त्री और आठ वर्ष के अथवा आठ वर्ष से ऊपर के बालक-बालिकाओं को एशियाटिक विभाग के दफतर में नाम लिखाकर परवाना ले लेना चाहिए। ये परवाने लेते समय अपने पुराने परवाने वहाँ के अधिकारियों को सौंप देने चाहिए। अरजी में हर हिन्दुस्तानी को अपना नाम, पता, जाति, उमर वगेरे लिखना चाहिए। नाम दर्ज करनेवाले अधिकारी (रजिस्ट्रार) को अर्जदार के शरीर पर कोई खास निशानियाँ हो तो उन्हें लिख लेना चाहिए और अर्जदार की सब अंगुलियों और अंगूठे की छाप लेनी चाहिए। निश्चित की हुई अवधि के भीतर जो हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुष इस तरह अरजी न करें, उनके ट्रान्सवाल में रहने के अधिकार रद हो जाएँगे। अरजी न करना कानून के अनुसार अपराध माना जाएगा। इस अपराध के लिए जुर्माना किया जा सकता है, जेल की सजा हो सकती है और कोई-कोई उचित समझे तो अपराधी को देशनिकाले की सजा भी दे सकती है। इस परवाने की मांग रास्ते चलते यात्री से भी की जा सकती है। परवानों की जाँच करने के लिए पुलिस अधिकारी लोगों के घरों में भी प्रवेश कर सकते हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ, इस प्रकार का कानून दुनिया के किसी भी हिस्से में स्वतंत्र मानवों के लिए नहीं बनाया गया होगा।

दूसरे दिन अग्रगण्य हिन्दुस्तानियों को एकत्र करके मैंने उन्हें यह बिल अक्षरशः समझाया। इसके फलस्वरूप उन लोगों पर बिलका वही असर हुआ, जो मुझ पर हुआ था। सब कोई

बिल की गंभीरता को समझ गये। वह निर्णय किया गया कि एक सार्वजनिक सभा की जाए।

११ सितम्बर, १९०६ को हिन्दुस्तानियों की सभा हुई। सभा में जितने प्रस्ताव पास हुए थे उनमें सच्चा प्रस्ताव तो एक ही था। उसका आशय इस प्रकार था: 'इस बिल के विरोध में सारे उपाय किये जाने के बावजूद यदि वह धारा-सभा में पास हो ही जाए, तो हिन्दुस्तानी उसके सामने हार न मानें और हार न मानने के फलस्वरूप जो-जो दुःख भोगने पड़ें उन सबको बहादुरी से सहन करें।'

सत्याग्रही साऊथ अफ्रीका

हममें से कोई यह जानता नहीं था कि कौम के इस निश्चय को अथवा आंदोलन को क्या नाम दिया जा सकता है। श्री मगनलाल गांधी ने 'सदाग्रह' नाम भेजा। यह नाम पसंद करने का कारण बताते हुए उन्होंने लिखा कि हिन्दुस्तानियों का यह आंदोलन एक महान 'आग्रह' है और यह आग्रह 'सद्' अर्थात् शुभ है, इसीलिए उन्होंने यह नाम चुना है। यह नाम मुझे पसंद आया। और 'सत्याग्रह' नाम बना दिया। सत्य के भीतर शांति का समावेश मानकर और किसी भी वस्तु का आग्रह करने से उसमें बल उत्पन्न होता है इसलिए आग्रह में बल का समावेश करके मैंने भारतीयों के इस आंदोलन को 'सत्याग्रह' – अर्थात् सत्य और शांति से उत्पन्न होनेवाले बल का नाम दिया और उसी नाम से इसका परिचय कराया। और तबसे 'पैसिव रेजिस्टेन्स' शब्द का उपयोग इस आंदोलन के लिए बन्द कर दिया।

४०. कारावास

एशियाटिक विभाग के अफसरों को ऐसा लगा कि जब तक अमुक खास नेता मुक्त हैं तब तक हम चाहे कुछ भी करेंगे, फिर भी आंदोलन को नहीं दबा सकेंगे। ऐसा मानकर उन्होंने हमलोगों में से कई लोगों को हिरासत में ले लिये।

हमें पकड़ लिये हैं यह जानकर कौमने जेल भर देने का प्रस्ताव किया।

हम लोगोंने एक पखवाडा पूरा जेलमें बिताया। जो नये आगंतुक आये वे खबर ले आये कि समाधान के संबंध में सरकार के साथ कुछ सलाह मशवरा चल रहा है। सूचित सुलह समझौता का सारांश यह था कि हिन्दुस्तानियों को स्वेच्छा से नाम दर्ज करवाकर परवाना प्राप्त कराना होगा और अगर हिन्दुस्तानियों की बहुत बड़ी संख्या स्वेच्छापूर्वक नाम दर्ज करवाती है तो सरकार 'काला कानून' अवश्य वापस ले लेगी। एशियाटिक रेग्युलेशन एक्ट 'काला कानून' के नाम से पहचाना जाता था।

मुझे जनरल स्मट्स के साथ मुलाकात के लिये प्रिटोरिया ले जाया गया। मैंने जो सुधार सूचित किये थे उस पर उन्होंने चर्चा के उपरान्त समाधान का मसौदा स्वीकार किया। जो जेल में थे, उन सभी को मुक्त कर दिये गये और मैं अपने देशवासियों को समाधान की शर्तों को समझाने के लिये चारों तरफ घूमने लगा और लोगों को वाकिफ करता रहा।

४१. हमला

ये पठान कोम को उभारना जरा भी कठिन नहीं था। अगर मैंने रिश्वत न खाई हो तो मैं दस अंगुलियों की छाप देने की बात उनसे क्यों कहूँ ? और सलाह मशविरे के बाद यह बात भी तय हो गई थी कि पहले दिन कौम के नेता ही सबसे पहले परवाने लेने जाएँगे। मेरा ऑफिस सत्याग्रह-मंडल का भी ऑफिस था। वहाँ पहुँचते ही मैंने ऑफिस की दीवाल के बाहर मीर आलम और उसके साथियों को खड़ा देखा। मीर आलम मेरा पुराना मुवक्किल था। अपने हर काम में वह मेरी सलाह लेता था। उसकी ऊँचाई ६ फूट से अधिक थी। वह कद्दावर और दोहरे शरीर का आदमी था। आज पहली ही बार मैंने मीर आलम को ऑफिस के अन्दर न देखकर बाहर खड़ा देखा और हम दोनों की आँखें मिलने पर भी उसने पहली दो बार मुझे सलाम नहीं किया। लेकिन मैंने उसे सलाम किया, इसलिए उसने भी मुझे सलाम किया। परन्तु आज उसके चेहरे पर हमेशा की मुसकान नहीं थी। मैंने देखा कि उसकी आँखों में गुस्सा भरा है। यह बात मैंने मन में लिख ली। मुझे यह भी लगा कि आज कुछ न कुछ होनेवाला है। अध्यक्ष ईसप मियां और दूसरे मित्र भी आ पहुँचे और हम एशियाटिक ऑफिस की ओर चल पड़े। मीर आलम और उसके साथी भी हमारे पीछे-पीछे आये।

वहाँ से एशियाटिक ऑफिस तीन मिनट के फासले पर रहा होगा कि मीर आलम मेरी बगल में आ गया। उसने मुझसे पूछा: "कहाँ जाते हो ?" मैंने उत्तर दिया: "मैं दस अंगुलियों की छाप देकर रजिस्टर (परवाना) निकलवाना चाहता हूँ। अगर तुम भी चलोगे तो तुम्हें दस अंगुलियों की छाप देने की जरूरत नहीं है। तुम्हारा परवाना (सिर्फ दो अंगुठों की छाप के साथ) पहले निकलवाने के बाद मैं अंगुलियों की छाप देकर अपना निकलवाऊँगा।

अंतिम वाक्य मैंने मश्किल से पूरा किया होगा कि मेरी खोपड़ी पर पीछे से लाठी का एक वार हुआ। मैं 'हे राम' बोलते-बोलते बेहोश होकर जमीन पर लुढ़क गया। लेकिन मीर आलम ने और उसके साथियों ने मुझ पर लाठियों के अधिक वार किये और लातें भी मारी। उनमें से कुछ ईसप मियाँ और थंबी नायडू ने झेली। इस कारण से ईसप मियाँ और थंबी नायडू पर भी थोड़ी मार पड़ी इतने में शोरगुल मचा। आने-जानेवाले गोरे इकट्ठे हो गये।

मीर आलम और उसके साथी भागे, लेकिन गोरों ने उन्हें पकड़ लिया। इस बीच पुलिस भी आ पहुँची। उसने पठानों को हिरासतमें ले लिया। पास ही श्री जे. सी. गिव्सन का ऑफिस था। मुझे उठाकर वहाँ ले जाया गया। कुछ देर बाद मुझे होश आया तब मैंने रेवरेंड डॉक को अपने चेहरे पर झुके हुए देखा। उन्होंने मुझसे पूछा: "आपको कैसा लगता है ?"

मैंने हँसकर जवाब दिया: "अब ठीक हूँ। लेकिन मेरे दाँतों में और पसलियों में दर्द होता है।" फिर मैंने पूछा: 'मीर आलम कहाँ है ?"

डॉक बोले: "उसे और उसके साथियों को गिरफतार कर लिया गया है।

मैंने कहा: "वे छूटने चाहिए।"

डॉक: "वह सब तो होता रहेगा। लेकिन आप यहाँ एक अपरिचित के ऑफिस में पड़े हैं। होंठ फट गया है। पुलिस आपको अस्पताल ले जाने को तैयार है। लेकिन अगर आप मेरे यहाँ चलें तो मैं और श्रीमती डॉक आपकी यथाशक्ति सार-संभाल करेंगे।"

मैंने कहा: "मुझे आपके ही घर ले चलिये। पुलिस के प्रस्ताव के लिए उसे धन्यवाद।"

इतनेमें एशियाटिक विभाग के अधिकारी श्री चमनी भी आ पहुँचे। मुझे एक गाड़ी में लिटा कर भले पादरी श्री डॉक के स्मिट स्ट्रीट स्थित निवास-स्थान पर ले जाया गया। मेरी जाँच के लिए डॉक्टर को बुलाया गया। इस बीच मैंने श्री चमनी से कहा: "मेरी आशा तो यह थी कि आपके ऑफिस में आकर और दस अंगुलियों की छाप देकर पहला परवाना मैं लूँगा। लेकिन ईश्वर को यह स्वीकार नहीं था। अब मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप इसी समय जाकर जरूरी कागजात ले आइये और पहला परवाना मुझे दीजिए। मैं आशा रखता हूँ कि मेरे पहले आप दूसरे किसीको परवाना नहीं देंगे।"

उन्होंने कहा: "ऐसी क्या जल्दी है ? अभी डॉक्टर आयेगा। आप आराम करें। बाद में सब कुछ हो जाएगा। दूसरों को परवाना दूँगा तो भी आपका नाम सबसे पहला रखूँगा।

मैं बोला: "ऐसा नहीं। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि यदि मैं जिन्दा रहूँ और ईश्वर को मंजूर हो, तो सबसे पहले मैं ही परवाना लूँगा। इसीलिए मेरा आग्रह है कि आप कागजात ले आइये।"

इस पर श्री चमनी कागजात लाने के लिए ऑफिस गये।

मेरा दूसरा काम एटर्नी-जनरल अर्थात् सरकारी वकील को यह तार करना था कि "मीर आलम और उसके साथियों ने मुझ पर जो हमला किया, उसके लिए मैं उन लोगों को दोषी मानता ही नहीं। जो भी हो, लेकिन मैं नहीं चाहता कि उन पर फौजदारी मुकदमा चले। मैं आशा करता हूँ कि मेरे खातिर आप उन्हें छोड़ देंगे !" लेकिन जोहानिसबर्ग के गोरों ने एटर्नी-जनरल को इस आशय का एक बड़ा पत्र लिखा: "अपराधी को सजा देने के बारे में गांधी के चाहे जो विचार हों, लेकिन इस देश में उन पर अमल नहीं किया जा सकता। गांधी को जो मार पड़ी है उसके बारे में वे भले ही कुछ न करें, लेकिन हमला करनेवाले लोगों ने यह मार उन्हें किसी निजी मकान में नहीं मारी है। यह अपराध पठानों ने आम रास्ते पर किया है। इसलिए यह एक सार्वजनिक अपराध माना जाएगा। कुछ अंग्रेज भी इस अपराध की गवाही देने की स्थितिमें हैं। अपराधियों को पकड़ना ही चाहिए।" इस आन्दोलन के कारण एटर्नी-जनरल ने फिर मीर आलम और उसके एक साथी को गिरफतार कर लिया और उन्हें तीन-तीन महीने की बड़ी कैद की सजा दी। केवल मुझे गवाह के रूपमें नहीं बुलाया गया।

अध्यक्ष के द्वारा कौम के लोगों को सम्बोधित करते हुए मैंने एक छोटासा गुजराती पत्र लिखकर छपने के लिए भेज दिया। पत्र इस प्रकार था।

"मेरी तबीयत अच्छी है। श्री डॉक और श्रीमती डॉक हृदय का सारा प्रेम उंड़ेल कर मेरी सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं।

जिन लोगों ने मुझे मारा है, उन पर मेरे मन में, जरा भी गुस्सा नहीं है। उन्होंने बेसमझी से यह काम किया है। उन पर मुकदमा चलाने की कोई जरूरत नहीं।"

श्री चमनी कागजात लेकर आये। बड़ी कठिनाई से और जैसे-तैसे मैंने अपनी दस अंगुलियों की छाप उन्हें दी। उस समय मैंने उनकी आँखों में आँसू देखे। उनके खिलाफ मुझे अकसर कड़ी बातें लिखनी पडती थीं। लेकिन इस घटना से मेरे सामने इस बात का प्रत्यक्ष चित्र खड़ा हुआ कि मौका आने पर मानव का हृदय कितना कोमल बन सकता है।

४२. सत्याग्रह का इतिहास

हिन्दुस्तानियों ने परवाने ले लिये थे। अब उस सरकार को खूनी कानून रद करना चाहिए था, लेकिन खूनी कानून रद करने के बजाय जनरल स्मट्सने नया ही कदम उठाया। उन्होंने विधानसभा में जो नया बिल पेश किया उसके द्वारा खुनी कानून को बहाल रखा और स्वेच्छा से लिये गये परवानों को कानूनी करार दिया। इस नये बिल को पढ़कर मैं तो हक्का-बक्का हो गया।

अन्त में सत्याग्रहियों का 'अल्टिमेटम' सरकार के पास भेजा गया। यदि समझौते की शर्तों के अनुसार एशियाटिक कानून रद नहीं किया जाएगा और यदि वैसा करने की सूचना कौम को अमुक समय तक नहीं दी जाएँगी, तो कौम के लोगों ने जो परवाने स्वेच्छा से लिये हैं उन्हें जला डाला जाएगा; और ऐसा करने के फलस्वरूप उन पर जो भी मुसीबतें आएगीं, उन्हें वे नम्रता से और दृढ़ता से सहन कर लेंगे।"

अवधि बीतने के दो-एक घंटे बाद परवाने जलाने की सार्वजनिक विधि पूरी करने के लिए एक सभा बुलाई गई थी।

सभा शुरू होने ही वाला थी कि एक स्वयंसेवक साईकल पर आ पहुँचा। उसके हाथ में तार था। उसमें सरकार का उत्तर था। उत्तर में हिन्दुस्तानी कौम के निश्चय के लिए खेद प्रकट किया गया था और यह भी कहा गया था कि सरकार अपना निश्चय बदलने में असमर्थ है। तार पढ़कर सभा में सबको सुना दिया गया। सभाने उसका स्वागत किया, मानो सभा के लोगों को इस बात का हर्ष हुआ कि सरकार द्वारा निश्चयपत्र की माँग स्वीकार कर लिये जाने से परवानों की होली जलाने का जो शुभ अवसर उनके हाथ से चला जाता वह चला नहीं गया।

इस सभा में मीर आलम भी हाजिर था। उसने सभा में यह घोषणा की कि मुझ पर हमला करने में उससे भूल हो गई थी और अपना असल परवाना भी उसने मुझे जलाने के लिए दे दिया। नया परवाना तो उसने स्वेच्छा से लिया ही नहीं था। मैंने मीर आलम का हाथ पकड़ा

और हर्ष से उसे दबाया। मैंने दुबारा मीर से कहा कि मेरे मन में तो उसके प्रति कभी रोष था ही नहीं। मीर आलम ने अपनी भूल स्वीकार करके परवाना जलाने के लिए दिया, इससे सभा की खुशी का पार न रहा।

कमेटी के पास जलाने के लिए २००० से ऊपर परवाने आ चुके थे। परवानों का ढ़ेर कड़ाही में डाला गया, ऊपर से घासलेट उड़ेला गया और ईसप मियाँ ने उसे दियासलाई दिखाई। सारी सभा खड़ी हो गई और जब तक परवाने जलते रहे तब तक उसकी तालियों से मैदान गूँजता रहा। जिन कुछ लोगों ने अभी तक परवाने अपने पास रख छोड़े थे, उनके परवानों की भी अब मंच पर वर्षा होने लगी। वे परवाने भी कड़ाही में डाल दिये गये।

इस सभा में अंग्रेजी अखबारों के संवाददाता आये थे। उन पर भी सभा के संपूर्ण दृश्य का बड़ा गहरा असर पड़ा। उन्होंने अपने अखबारों में सभा का हूबहू वर्णन किया।

ट्रान्सवाल विधानसभा की जिस बैठक में एशियाटिक कानून पास हुआ था, उसी बैठक में जनरल स्मट्स ने एक दूसरा बिल भी पेश किया था। उसका नाम था 'इमिग्रेन्ट्स रेस्ट्रिक्शन एक्ट' – अर्थात् नये आनेवालों पर अंकुश लगानेवाला कानून | यह कानून वैसे तो सभी पर लागू होता था, परन्तु उसका मुख्य उद्देश्य नये आनेवाले हिन्दुस्तानियों पर प्रतिबन्ध लगाना था।

सत्याग्रह-समिति ने यह निर्णय किया था कि चाहे जिस हिन्दुस्तानी के द्वारा यह कसौटी न कराई जाए। सोचा यह गया था कि 'इमिग्रेशन एक्ट' में प्रतिबन्ध की जो दूसरी शर्ते हैं और जिनसे हमारा कोई भी विशेष नहीं है, उन शर्तो का पालन कर सकनेवाले किसी हिन्दुस्तानी को ट्रान्सवाल में दाखिल करके जेल-महल में बैठा दिया जाए।

दक्षिण अफ्रिका के कानून में ईसाई धर्म के अनुसार हुए विवाह अधिकारी के ऑफिस में रजिस्टर कराये हुए विवाह के सिवा-दूसरे किसी विवाह के लिए स्थान नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दु, मुस्लिम, पारसी आदि धर्मों की विधि के अनुसार हुए विवाह न्यायाधीश के उपर्युक्त भयंकर निर्णय से दक्षिण अफ्रिका में रद माने गये और इसलिए उस कानून

के अनुसार दक्षिण अफ्रिका में असंख्य विवाहित हिन्दुस्तानी स्त्रीयों का दरजा अपने पतियों की धर्मपत्नी का रहकर उपपत्नीयों का हो गया तथा उन स्त्रीयों की संतान को अपने पिताजी की विरासत पाने का भी अधिकार नहीं रह गया। इस स्थिति को न तो स्त्रीयाँ सहन कर सकती थी, न पुरुष सहन कर सकते थे।

दक्षिण अफ्रिका में बसे हुए हिन्दुस्तानियों में इससे भारी खलबली मच गई। स्त्रीयों का अपमान होने के बाद धैर्य कैसे रखा जाता ? जितने भी सत्याग्रही मिलें उन्हीं के साथ हमने तीव्र सत्याग्रह करने का निश्चय किया। अब स्त्रीयों को लड़ाई में भाग लेने से रोका नहीं जा सकता था। यही नहीं, हमने स्त्रीयों को लड़ाई में भरती होने का निमंत्रण देने का निश्चय किया।

न्यूकैसल नेटाल में कोयले की खदानों का केन्द्र है। इन खदानों में मुख्यतः हिन्दुस्तानी मजदूर काम करते थे। बहनों ने अपना काम आरंभ कर दिया। उनका प्रभाव बिजली की तरह फैल गया। तीन पौंड के कर की करुण कहानी ने मजदूरों के हृदय को पिघला दिया। उन्होंने अपना काम छोड़ दिया। मैंने तय किया कि मुझे न्यूकैसल जाना चाहिए। मैं तुरन्त रवाना हो गया।

मजदूर कोई पाँच-पचीस नहीं थे, बल्कि सैंकड़ों थे; और उनके हजारों होने में भी कोई देर नहीं लगती। उन सबके लिए मकान मैं कहाँ से लाऊँ ? खाना कहाँ से लाऊँ ? लोगों की भारी भीड़ जम गई। इतने अधिक और निरन्तर बढ़ते रहनेवाले मजदूरों को एक ही स्थान पर बगैर काम-धन्धे के रखना यदि असंभव नहीं तो भयंकर काम अवश्य था। मुझे अपनी समस्या का हल मिल गया। इस समूह को मुझे ट्रान्सवाल ले जाना चाहिए और जिस प्रकार फिनिकस के १६ सत्याग्रही गिरफतार हो गये उसी प्रकार इस समूह के भी जेल में बैठा देना चाहिए। मेरे पास लगभग पाँच हजार आदमी एकत्र हो गये थे।

४३. सत्याग्रह का विजयोल्लास

गांधी और कस्तूरबा, साऊथ अफ्रिका, १९१३

हजारों निर्दोष मनुष्यों को जेल में बंद रखने की शक्ति दक्षिण अफ्रिका की सरकार में नहीं थी। भारत के वाईसरॉय भी इस बात को सहन करनेवाले नहीं थे। सारी दुनिया देख रही थी कि जनरल स्मट्स अब क्या करते हैं। दक्षिण अफ्रिका की सरकार ने वही किया जो ऐसे समय सामान्यतः दूसरी सरकारें करती है।

प्रजामत से डर कर चलनेवाले राज्य एक कमिशन नियुक्त करके ऐसी विषम स्थिति से बाहर निकल जाते हैं। यह कमिशन नाम की जाँच करता है। और कमिशन जो सिफारिशें करता है उन पर अनिवार्य रूप में अमल करने की सामान्य प्रथा होती है। इसलिए ऐसे कमिशन की सिफारिशों का आश्रय लेकर राज्य वही न्याय करते हैं, जिनके लिए वे पहले इनकार कर चुके होते हैं। जनरल स्मट्स के इस कमिशन में तीन सदस्य नियुक्त किये गये थे। जनरल स्मट्स को एक पत्र लिखा।

इस प्रकार आठ वर्ष के अंत में सत्याग्रह की यह महान लड़ाई पूरी हुई और यह माना गया कि संपूर्ण दक्षिण अफ्रिका में बसे हुए हिन्दुस्तानियों को शान्ति मिली। इंग्लेण्ड से हिन्दुस्तान जाने के लिए दक्षिण अफ्रिका से रवाना हो गया। जिस दक्षिण अफ्रिका में मैंने २१ वर्ष निवास किया और असंख्य कड़वे और मीठे अनुभव प्राप्त किये तथा जहाँ मैं अपने जीवन के लक्ष्य को समझ सका उस देश को छोड़ना मुझे बहुत कठिन मालूम हुआ। और में दुःखी हुआ।

भाग-९: स्वदेश और आश्रम की स्थापना

४४. पूना में

(सफल सत्याग्रह के बाद भारत में)

गोखले ने और सोसायटी (भारत-सेवक-समाज) के सदस्यों ने मुझे अपने प्रेम से नेहला दिया। जहाँ तक मुझे याद है, उन्होंने सब सदस्यों को पूना बुलाया था। सबके साथ कई विषयों पर मैंने दिल खोलकर बातचीत की।

"मुझे एक आश्रम खोलकर उसमें फीनिकस के साथियों को रखना और खुद वहाँ बैठ जाना है। इस विश्वास के कारण कि गुजराती होने से मेरे पास गुजरात की सेवा के जरिये देश की सेवा करने की पूँजी अधिक होनी चाहिए, मैं गुजरात में ही कहीं स्थिर होना चाहता हूँ।" गोखले को ये विचार पसन्द पड़े थे, इसलिए उन्होंने कहा: "आप अवश्य ऐसा करे। पर यह निश्चित है कि आपको आश्रम के लिए पैसा मुझ से लेना है। उसे मैं अपना ही आश्रम समझूँगा।"

मेरा हृदय फूल उठा। मैं यह सोचकर बहुत खुश हुआ कि मुझे पैसा उगाहने के धन्धे से मुक्ति मिल गयी।

४५. आश्रम की स्थापना

सन् १९१५ के मई महीने की २५ तारीख के दिन कोचरब, अहमदाबाद में सत्याग्रह- आश्रम की स्थापना हुई।

लगभग पचीस स्त्री-पुरुषों से आश्रम का आरंभ हुआ था। सब एक रसोई में भोजन करते थे और इस तरह रहने की कोशिश करते थे मानो एक ही कुटुम्ब के हों।

आश्रम को कायम हुए अभी कुछ ही महीने बीते थे कि इतने में जैसी कसौटी की मुझे आशा नहीं थी वैसी कसौटी हमारी हुई। भाई अमृतलाल ठक्कर का पत्र मिला : "एक गरीब और प्रामाणिक अन्त्यज परिवार है। वह आपके आश्रम में रहना चाहता है। क्या उसे भरती करेंगे ?"

मैंने साथियों को वह पत्र पढ़ने के लिए दिया। उन्होंने उसका स्वागत किया। भाई अमृतलाल ठक्कर को लिखा गया कि यदि वह परिवार आश्रम के नियमों का पालन करने को तैयार हो, तो हम उसे भरती करने के लिए तैयार हैं।

नियमों का पालन करने को वे तैयार थे। उन्हें आश्रम में रख लिया।

सहायक मित्र-मंडल में खलबली मच गयी। जिस कुएँ में बंगले के मालिक का हिस्सा था, उस कुएँ से पानी भरने में हमें अडचन होने लगी। चरसवाले पर हमारे पानी के छीटे पड़ जाते, तो वह भ्रष्ट हो जाता। उसने गालियाँ देना और दूदाभाई को सताना शुरू किया। मैंने सबसे कह दिया कि गालियाँ सहते जाओं और दृढ़ता-पूर्वक पानी भरते रहो। हमें चुपचाप गालियाँ सुनते देखकर चरसवाला शरमिन्दा हुआ और उसने गालियाँ देना बन्द कर दिया।

पैसे की मदद बन्द होने के साथ बहिष्कार की अफवाहें मेरे कानों तक आने लगीं मैंने साथियोंसे चर्चा करके तय कर रखा था; "यदि हमारा बहिष्कार किया जाए और हमें कहीं से कोई मदद न मिले, तो भी अब हम अहमदाबाद नहीं छोड़ेगे। अन्त्यजों की बस्ती में

जाकर उनके साथ रहेंगे और जो कुछ मिलेगा उससे अथवा मजदूरी करके अपना निर्वाह करेंगे।"

आखिर मगनलाल ने मुझे नोटिस दी : "अगले महिने आश्रम का खर्च चलाने के लिए हमारे पास पैसे नहीं हैं।"

मैंने धीरज से जवाब दिया: "तो हम अन्त्यजों की बस्ती में रहने जाएँगे।

मुझ पर ऐसा संकट पहली ही बार नहीं आया था। हर बार अंतिम घड़ी में प्रभु ने मदद भेजी है।

मगनलाल के नोटिस देने के बाद तुरन्त ही एक दिन सबेरे किसी लड़के ने आकर खबर दी : "बाहर मोटर खड़ी है और एक सेठ आप को बुला रहे हैं।" मैं मोटर के पास गया। सेठ ने मुझसे पूछा: "मेरी इच्छा आश्रम को कुछ मदद देने की है, आप लेंगे ?"

मैंने जवाब दिया: "अगर आप कुछ देंगे, तो मैं जरूर लूँगा। मुझे कबूल करना चाहिए कि इस समय मैं आर्थिक संकट में भी हूँ।"

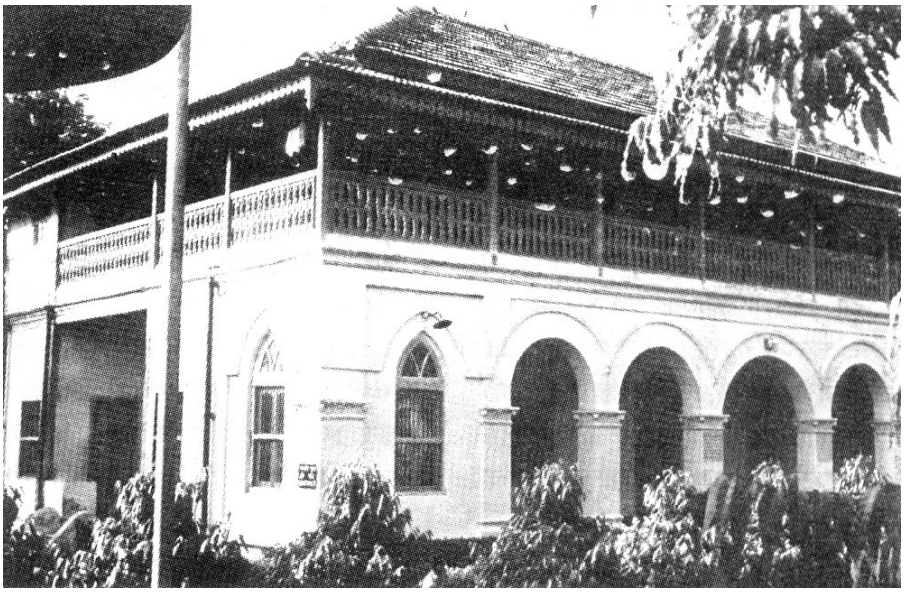

सत्याग्रह आश्रमकी स्थापना

कोचरब: अहमदाबाद २५.५.१९१५

"मैं कल इसी समय आऊँगा। तब आप आश्रम में होंगे ?"

मैंने 'हाँ' कहा और सेठ चले गये। दूसरे दिन नियत समय पर मोटर का भोपू बोला। लड़कों ने खबर दी। सेठ अन्दर नहीं आये। मैं उनसे मिलने गया। वे मेरे हाथ पर तेरह हजार के नोट रखकर बिदा हो गये।

मैंने इस मदद की कभी आशा नहीं रखी थी। मदद देने की यह रीति भी नई देखी। उन्होंने आश्रम में पहले कभी कदम नहीं रखा था। मुझे याद आता है कि मैं उनसे एक ही बार मिला था। न आश्रम में आना, न कुछ पूछना, बाहर ही बाहर पैसे देकर लौट जाना। ऐसा यह मेरा पहला ही अनुभव था। इस सहायता के कारण अन्त्यजों की बस्ती में जाना रूक गया। मुझे लगभग एक साल का खर्च मिल गया।

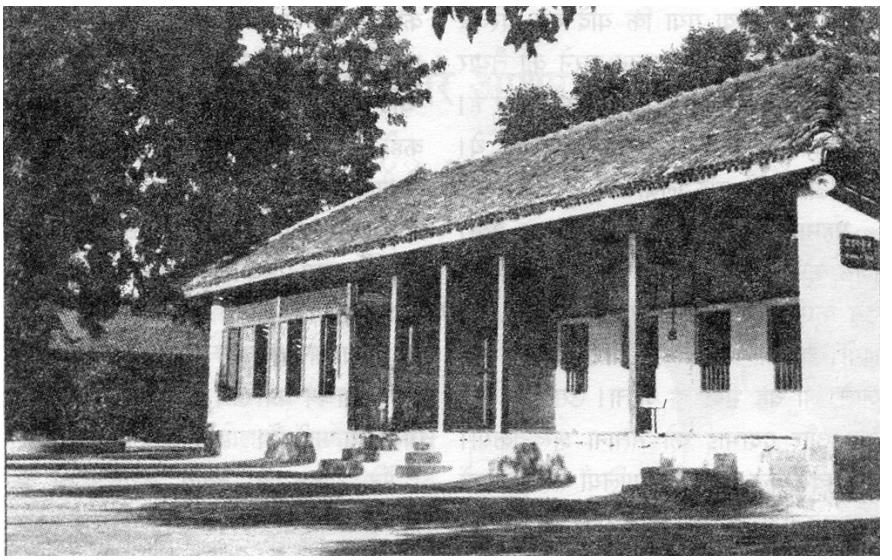

हृदयकुंज: साबरमती आश्रम

स्थापना: जुलाई १९१७

भाग-१०: चम्पारन

४६. नील का दाग

चम्पारन के किसान अपनी ही जमीन के ३/२० भाग में नील की खेती उसके असल मालिकों के लिए करने को कानून से बँधे हुए थे। इसे वहाँ 'तीन कठिया' कहा जाता था। बीस कट्ठे का वहाँ एक एकड़ था और उसमें से तीन कट्ठे जमीन में नील बोने की प्रथा को 'तीन कठिया' कहते थे।

राजकुमार शुकल नामक चम्पारन के एक किसान थे। उन पर दुःख पड़ा था। वे तो खुद मुझे चम्पारन के किसानों के दुःख बताना चाहते थे।

सन् १९१७ के आरंभ में कलकत्ते से हम दो व्यक्ति रवाना हुए। मुझे तो किसानों की हालत की जाँच करनी थी। नील के मालिकों के विरुद्ध जो शिकायतें थीं, उनमें कितनी सचाई है यह देखना था। इस काम के लिए हजारों किसानों से मिलने की ज़रूरत थी। किन्तु उनके संपर्क में आने से पहले मुझे यह आवश्यक मालूम हआ कि मैं नील के मालिकों की बात सुन लूँ और कमिशनर से मिल लूँ। मैंने दोनों को चिट्ठी लिखी।

मालिकों के मंत्री के साथ मेरी जो मुलाकात हुई, उसमें उसने साफ कह दिया कि आपकी गिनती परदेशी में होती है। आपको हमारे और किसानों के बीच दखल नहीं देना चाहिए। फिर भी अगर आपको कुछ कहना हो, तो मुझे लिखकर सूचित कीजिए। मैंने मंत्री से नम्रतापूर्वक कहा कि मैं अपने को परदेशी नहीं मानता और किसान चाहें तो उनकी स्थिति की जाँच करने का मुझे पूरा अधिकार है।

मैं कमिशनर साहब से मिला। उन्होंने तो धमकाना ही शुरू कर दिया और मुझे सलाह दी कि मैं आगे बढ़े बिना तिरहुत छोड़ दूँ।

मैंने सारी बातें साथियों को सुनाकर कहा कि संभव है सरकार मुझे जाँच करने से रोके और जेल जाने का समय मेरी अपेक्षा से भी पहले आ जाए। अगर गिरफतारी होनी ही है,

तो मुझे मोतीहारी में और संभव हो तो बेतिया में गिरफ्तार होना चाहिए और इसके लिए वहाँ जल्दी से जल्दी पहुँच जाना चाहिए।

चम्पारन तिरहुत विभाग का एक जिला है और मोतीहारी उसका मुख्य शहर। बेतिया के आसपास राजकुमार शुक्ल का घर था और उसके आसपास की कोठियों के किसान ज्यादा-से-ज्यादा कंगाल थे। राजकुमार शुक्ल को उनकी दशा दिखाने का लोभ था और मुझे अब उसे देखने की इच्छा थी।

अतएव मैं उसी दिन साथियों को लेकर मोतीहारी के लिए रवाना हो गया। मोतीहारी में गोरखबाबू ने आश्रय किया। जिस दिन हम पहुँचे उसी दिन सुना कि मोतीहारी से कोई पाँच मील दूर रहनेवाले एक किसान पर अत्याचार किया गया है। मैंने निश्चय किया कि धरणीधरप्रसाद वकील को साथ लेकर मैं दूसरे दिन सवेरे उसे देखने जाऊँगा। सवेरे हाथी पर सवार होकर हम चल पड़े। आधे रास्ते पहुँचे होंगे कि इतने में पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट का आदमी आ पहुँचा और मुझसे बोला, "सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबने आपको सलाम भेजा है।" मैं समझ गया। धरणीधर बाबू से मैंने आगे जाने को कहा। मैं उस जासूस के साथ उसकी माड़े की गाड़ी में सवार हुआ। उसने मुझे चम्पारन छोड़कर चले जाने की नोटिस दी। वह मुझे घर ले गया और मेरी सही माँगी। मैंने जवाब दिया कि मैं चम्पारन छोड़ना नहीं चाहता; मुझे तो आगे बढ़ना है और जाँच करनी है। निर्वासन की आज्ञा का अनादर करने के लिए मुझे दूसरे ही दिन कोर्ट में हाजिर रहने का समन मिला।

समन की बात एकदम चारों ओर फैल गयी लोग कहते थे कि उस दिन मोतीहारी में जैसा दृश्य देखा गया वैसा पहले कभी न देखा गया था। गोरख बाबू के घर और दफतर पर लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। सौभाग्य से मैंने अपना सारा काम रात को निपटा लिया था। इसलिए मैं इस भीड़ को सँभाल सका। साथियों का मूल्य मुझे पूरा-पूरा मालूम हुआ। वे लोगों को संयत रखने में जूट गये। कचहरी में जहाँ जाता वहाँ दल के दल लोग मेरे पीछे आते। कलेक्टर, मजिस्ट्रेट, सुपरिन्टेन्डन्ट आदि के साथ भी मेरा एक प्रकार का संबंध स्थापित हो गया। सरकारी नोटिसों वगैरा के खिलाफ कानूनी विरोध करना चाहता, तो मैं कर सकता

था। इसके बदले मैंने उनकी सब नोटिसों को स्वीकार कर लिया और अधिकारियों के साथ निजी व्यवहार में मिठास से काम लिया। इससे वे समझ गये कि मुझे उनका विरोध नहीं करना है, बल्कि उनकी आज्ञा का विनय-पूर्वक विरोध करना है। इससे उनमें एक प्रकार की निर्भयता आ गयी। मुझे तंग करने के बदले उन्होंने लोगों को काबू में रखने में मेरी और मेरे साथियों की सहायता का प्रसन्नता-पूर्वक उपयोग किया। किन्तु साथ ही वे समझ गये कि उनकी सत्ता आज से लुप्त हुई। लोग क्षणरमर को दण्ड का भय छोड़कर अपने नये मित्र के प्रेम की सत्ता के अधीन हो गये।

याद रहे कि चम्पारन में मुझे कोई पहचानता न था फिर भी उनका और मेरा मिलाप पुराने मित्रों जैसा लगा। अतएव यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं, बल्कि अक्षरशः सत्य है कि इस कारण मैंने वहाँ ईश्वर का, अहिंसा का और सत्य का साक्षात्कार किया।

चम्पारन का यह दिन मेरे जीवन में कभी न भूलने-जैसा था। मेरे लिए और किसानों के लिए यह एक उत्सव का दिन था।

मुकदमा चला। सरकारी वकील, मजिस्ट्रेट आदि घबराये हुए थे। उन्हें सुझ नहीं पड़ रहा था कि क्या किया जाए।

सजा सुनने के लिए कोर्ट में जाने का समय हुआ, उससे कुछ पहले मेरे नाम मजिस्ट्रेट का हुकम आया कि गवर्नर साहब की आज्ञा से मुकदमा वापस ले लिया गया है। साथ ही कलेक्टर का पत्र मिला कि मुझे जो जाँच करनी हो, मैं करूँ और उसमें अधिकारियों की ओर से जो मदद आवश्यक हो, सो माँग लूँ। ऐसे तात्कालिक और शुभ परिणाम की आशा हम में से किसी ने नहीं रखी थी।

किसानों के दल-के-दल अपनी कहानी लिखाने के लिए आने लगे थे। कहानी लिखाने वालों की साथ भी तो भीड़ रहती ही थी। इससे मकान का अहाता और बगीचा सहज ही भर जाता था।

४७. उजला पहलू

जैसे-जैसे मेरे पड़ाव पर लोगों की आम-दो रफ्त बढ़ती गयी वैसे-वैसे निलहों का क्रोध बढ़ता गया, उनकी ओर से मेरी जाँच को बन्द कराने के प्रयत्न बढ़ते गये।

गवर्नर सर एडवर्ड गेटने मुझे बुलाया और कहा कि वे स्वयं एक जाँच-समिति नियुक्त करना चाहते है। उन्होंने मुझे उसका सदस्य बनने के लिए आमंत्रित किया।

जाँच-समिति ने किसानों की सारी शिकायतों को सही ठहराया और निलहे गोरों ने उनसे जो रकम अनुचित रीति से वसूल की थी, उसका कुछ अंश लौटाने और 'तीन कठिया' के कानून को रद करने की सिफारिश की।

इस प्रकार सौ साल से चले आनेवाले 'तीन कठिया' के कानून के रद होते ही निलहे गोरों के राज्य का अस्त हुआ, जनता का जो समुदाय बराबर दबा ही रहता था उसे अपनी शक्ति का कुछ भान हुआ और लोगों का यह वहम दूर हुआ।

भाग-११ : अहमदाबाद के मजदूरों

४८. मजदूरों के संपर्क में

श्री अनसूयाबाई का पत्र उनके मजदूर-संघ के बारे में आया था। मजदूरों की तनख्वाहें कम थीं। तनख्वाह बढ़ाने की उनकी माँग बहुत पुरानी थी। इस मामले न उनकी रहनुमाई करने का उत्साह मुझ में था। इसलिए मौका मिलते ही मैं पहले अहमदाबाद पहुँचा।

मेरी स्थिति बहुत ही नाजुक थी। मजदूरों का मामला मुझे मजबूत मालूम हुआ। श्री अनसूयाबाई को अपने सगे भाई के साथ लड़ना था। मजदूरों और मालिकों के बीच के इस दारूण युद्ध में श्री अंबालाल साराभाई ने मुख्य रूप से हिस्सा लिया था। मिल-मालिकों के साथ मेरा मीठा संबंध था। उनके विरुद्ध लड़ने का काम विकट था। उनसे चर्चायें करके मैंने प्रार्थना की कि वे मजदूरों की माँग के संबंध में पंच नियुक्त करें। किन्तु भालिकों ने अपने और मजदूरों के बीच पंच के हस्तक्षेप की आवश्यकता को स्वीकार न किया।

मैंने मजदूरों को हड़ताल करने की सलाह दी। यह सलाह देने से पहले मैं मजदूरों के और मजदूर नेताओं के संपर्क में अच्छी तरह आया। उन्हें हड़ताल की शर्ते समझायीं :

१. किसी भी दशा में शांति भंग न होने दी जाए।

२. जो मजदूर काम पर जाना चाहे उसके साथ जोर-जबरदस्ती न की जाए।

३. मजदूर भिक्षा का अन्न न खायें।

४. हड़ताल कितनी ही लम्बी क्यों न चले, वे दृढ़ रहें और अपने पास पैसा न रहे तो दूसरी मजदूरी करके खाने योग्य कमा लें।

मजदूर-नेताओं ने ये शर्ते समझ ली और स्वीकार कर लीं। मजदूरों की आम सभा हुई और उसमें उन्होंने निश्चय किया कि जब तक उनकी माँग मंजूर न की जाए अथवा उसकी योग्यता-अयोग्यता की जाँच के लिए पंच की नियुक्ति न हो, तब तक वे काम पर नहीं जाएँगे।

मजदूरों ने शुरू के दो हफतों में खूब हिम्मत दिखायी, ज्ञाति भी खुश रखी; प्रतिदिन की सभाओं में वे बड़ी संख्या में हाजिर भी रहे। प्रतिज्ञा का स्मरण मैं रोज उन्हें कराता ही था। वे रोज पुकार-पुकार कर रहते थे, "हम मर मिटेंगे, पर अपनी टेक कभी न छोडेंगे।"

लेकिन आखिर वे कमजोर पड़ते जान पड़े। मैं परेशान हुआ। यह सोचने लगा कि ऐसे समय में मेरा धर्म क्या हो सकता है।

सबेरे का समय था। मैं सभा में बैठा था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मुझे क्या करना चाहिए। किन्तु सभा में ही मेरे मुँह से निकल गया, "यदि मजदूर फिर से दृढ़ न बने और फैसला होने तक हड़ताल को चला न सकें, तो मैं तब तक के लिए उपवास करूँगा।"

जो मजदूर हाजिर थे, वे सब हक्के-बक्के रह गये। अनसूया बहन की आँखों से आँसू की धारा बह चली। मजदूर बोल उठे, "आप नहीं, हम उपवास करेंगे। आपको उपवास नहीं करना चाहिए। हमें माफ कीजिए। हम अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे।"

मैंने कहा, "आपको उपवास करने की ज़रूरत नहीं है। आपके लिए तो यही बस है कि आप अपनी प्रतिज्ञा का पालन करें। हमारे पास पैसा नहीं है। हम मजदूरों को भीख का अन्न खिलाकर हड़ताल चलाना नहीं चाहते। आप कुछ मजदूरी कीजिए और उससे अपनी रोज की रोटी के लायक पैसा कमा लीजिए। ऐसा करेंगे तो फिर हड़ताल कितने ही दिन क्यों न चले, आप निश्चिन्त रह सकेंगे। मेरा उपवास तो अब फैसले से पहले न छूटेगा।"

मेरे पहले उपवास में अनसूयाबहन, दूसरे कई मित्र और मजदूर साथी बने। उन्हें अधिक उपवास न करने के लिए मैं मुश्किल से समझा सका। इस प्रकार चारों ओर प्रेममय वातावरण बन गया। मालिक केवल दयावश होकर समझौते का रास्ता खोजने लगे। अनसूयाबहन के यहाँ उनकी चर्चायें चलने लगीं। श्री आनन्दशंकर ध्रुव भी बीच में पड़े। आखिर वे पंच नियुक्त हुए और हड़ताल टूटी। मुझे केवल तीन उपवास करने पड़े। मालिकों ने मजदूरों को मिठाई बाँटी। इक्कीसवें दिन समझौता हुआ।

भाग-१२: खेड़ा-सत्याग्रह

४९. खेड़ा-सत्याग्रह

मजदूरों की हड़ताल समाप्त होने के बाद दम लेने को भी समय न मिला और मुझे खेड़ा जिले के सत्याग्रह का काम हाथ में लेना पड़ा।

खेडा सत्याग्रह, १९१८

खेड़ा जिले में अकाल की-सी स्थिति होने के कारण खेड़ा के पाटीदार लोग लगान माफ कराने की कोशिश कर रहे थे।

कानून यह था कि अगर फसल चार ही आना या उससे कम आवे, तो उस साल का लगान माफ किया जाना चाहिए। पर सरकारी अधिकारियों का अंदाज चार आने से अधिक था। लोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा रहा था कि उपज चार आने से कम कूती जानी चाहिए, पर सरकार क्यों मानने लगी ? जितना अनुनय-विनय हो सकता था, सो सब कर चुकने के बाद और साथियों से परामर्श करने के पश्चात् मैंने सत्याग्रह करने की सलाह दी।

शुरू के दिनों में लोगों में खूब हिम्मत दिखायी देती थी। शुरू-शुरू में सरकारी कार्रवाई भी कुछ ढीली ही थी। लेकिन जैसे-जैसे लोगों की दृढ़ता बढ़ती मालूम हुई, वैसे-वैसे सरकार को भी अधिक उग्र कार्रवाई करने की इच्छा हुई। कुर्की करनेवालों ने लोगों के पशु बेच डाले, घर में से जो चाहा सो माल उठाकर ले गये। चौथाई जुर्माने की नोटिसें निकली। किसी-किसी गाँव की सारी फसल जब्त कर ली गयी। भयभीत लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए मोहनलाल पंड्या के नेतृत्व में मैंने एक ऐसे खेत में खड़ी प्याज की तैयार फसल

को उतार लेने की सलाह दी, जो अनुचित रीति से जब्त किया गया था। मेरी दृष्टि में इससे कानून का भंग नहीं होता था। लेकिन अगर कानून टूटता हो, तो भी मैंने यह सुझाया कि मामूली-से लगान के लिए समूची तैयार फसल को जब्त करना कानूनन् ठीक होते हुए भी नीति के विरुद्ध है और स्पष्ट लूट है, अतएव इस प्रकार की जब्ती का अनादर करना हमारा धर्म है। लोगों का स्पष्ट रूप से समझा दिया था कि ऐसा करने में जेल जाने और जुर्माना होने का खतरा है। मोहनलाल पंड्या तो यही चाहते थे। सत्याग्रह के अनुरूप किसी रीति से किसी सत्याग्रही के जेल गये बिना खेड़ा की लड़ाई समाप्त हो जाए, यह चीज उन्हें अच्छी नहीं लग रही थी। उन्होंने इस खेत का प्याज खुदवाने का बीड़ा उठाया। सात-आठ आदमियों ने उनका साथ दिया।

सरकार उन्हें पकड़े बिना भला कैसे रहती ? मोहनलाल और उनके साथी पकड़े गये। इससे लोगों का उत्साह बढ़ गया। जहाँ लोग जेल इत्यादि के विषय में निर्भय बन जाते हैं, वहाँ राजदण्ड लोगों के दबाने के बदले उनमें शूरवीरता उत्पन्न करता है।

जेल जानेवालों को पहुँचाने के लिए एक जुलूस उनके साथ हो गया, और उस दिन से मोहनलाल पंड्या को लोगों की ओर से प्याजचोर' की सम्मानित पदवी प्राप्त हुई, जिसका उपभोग वे आज तक कर रहे हैं।

मेरा झुकाव इस ओर था कि सत्याग्रही के अनुरूप इसकी समाप्ति का कोई शोभास्पद मार्ग निकल आये, तो उसे अपनाना ठीक होगा। ऐसा एक अनसोचा उपाय सामने आ गया। नडियाद तालुका के तहसीलदार ने संदेशा भेजा कि अगर अच्छी स्थितिवाले पाटीदार लगाने अदा कर दें, तो गरीबों का लगान मुलतवी रहेगा। इस विषय में मैंने लिखित स्वीकृति माँगी और वह मिल गयी। तहसीलदार अपनी तहसील की ही जिम्मेदारी ले सकता था। सारे जिले की जिम्मेदारी तो कलेक्टर ही ले सकता था। इसलिए मैंने कलेक्टर से पूछा। उनका जवाब मिला की तहसीलदार ने जो कहा है उसके अनुसार तो हुकम निकल ही चुका है। मुझे इसका पता नहीं था। लेकिन यदि ऐसा हुकम निकल चुका हो, तो माना जा

सकता है कि लोगों की प्रतिज्ञा का पालन हुआ। प्रतिज्ञा में यही वस्तु थी, अतएव इस हुकम से हमने संतोष माना।

खेड़ा की लड़ाई से गुजरात के किसान-समाज की जागृति का और उसकी राजनीतिक शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। सब कोई समझ गये कि जनता की मुक्ति का आधार स्वयं जनता पर, उसकी त्यागशक्ति पर है। सत्याग्रह ने खेड़ा के द्वारा गुजरात में अपनी जड़ जमा ली।

५०. मृत्यु-शय्या पर

उस दिनों मेरे आहार में मुख्यतः सिकी हुई और कुटी हुई मूँगफली, उसके साथ थोड़ा गुड़, केले और दो-तीन नीबू का पानी, इतनी चीजे रहा करती थीं। मैं जानता था कि अधिक मात्रा में खाने से मूँगफली नुकसान करती है। फिर भी वह अधिक खा ली गयी। उसके कारण पेट में कुछ पेचिश रहने लगी।

उस दिन कोई त्यौहार था। मुझे याद पड़ता है कि मैंने कस्तूरबाई से कह दिया था कि मैं दोपहर को भी नहीं खाऊँगा। लेकिन उसने मुझे ललचाया और मैं लालच में फँस गया। उन दिनों मैं किसी पशु का दूध नहीं लेता था। इससे घी छाछ का भी मैंने त्याग कर दिया था। इसलिए उसने मुझसे कहा कि आपके लिए दले हुए गेहूँ को तेल में भुनकर लपसी बनायी गयी है और खास तौर पर आपके लिए ही पूरे मूंग भी बनाये गये हैं। मैं स्वाद के वश होकर पिघला। पिघलते हुए भी इच्छा तो यह रखी थी कि कस्तूरबाई को खुश रखने के लिए थोड़ा खा लूँगा। पर शैतान अपना निशाना ताक कर ही बैठा था। खाने बैठा तो थोड़ा खाने के बदले पेट भर कर खा गया। इस प्रकार स्वाद तो मैंने पूरा लिया, पर साथ ही यमराज को न्योता भी भेज दिया। खाने के बाद एक घंटा भी न बीता था कि जोर की पेचिश शुरू हो गयी।

दवा तो लेनी ही न थी; सोचा, किये हुए पाप की सजा भोगूँगा। चौबीस घंटों में तीस-चालीस बार पाखाने की हाजत हुई होगी। खाना मैं बन्द कर ही चुका था, और शुरू के दिनों में तो मैंने फल का रस भी नहीं लिया था। एक रात तो मैंने बिलकुल ही आशा छोड़ दी थी। मुझे ऐसा भास हुआ कि अब मृत्यु समीप ही है। यों मैं मौत की राह देखता बैठा था।

मेरी तबीयत की हिफाजत का जिम्मा शंकरलाल बेंकरने अपने हाथ में लिया था। उन्होंने डॉ. दलाल से सलाह लेने का आग्रह किया। डॉ. दलाल आये। उनकी तत्काल निर्णय करने की शक्ति ने मुझे मुग्ध कर लिया। ये बोले:

जब तक आप दूध न लैंगे, मैं आपके शरीर को फिर से हृष्ट-पृष्ट न बना सकूँगा। उसे पुष्ट बनाने के लिए आपको दूध लेना चाहिए और लोहे तथा आर्सेनिक की पिचकारियाँ लेनी चाहिए। यदि आप इतना करें, तो आपके शरीर को पुनः पुष्ट करने की गारण्टी मैं देता हूँ।"

मैंने जवाब दिया: "पिचकारी लगाइये, लेकिन दूध मैं नहीं लूँगा।"

डॉक्टर ने पूछा: "दूध के सम्बन्ध में आपकी प्रतिज्ञा क्या है ?"

"यह मानकर कि गाय-भैंस पर फूँके की क्रिया की जाती है, मुझे दूध से नफरत हो गयी है। और, यह तो मैं सदा से मानता रहा हूँ कि दूध मनुष्य का आहार नहीं है। इसलिए मैंने दूध छोड़ दिया है।"

यह सुनकर कस्तूरबाई, जो मेरी खटिया के पास ही खड़ी थी, बोल उठी: "तब तो बकरी का दूध आप ले सकते हैं।"

डॉक्टर बीच में बोले: "आप बकरी का दूध लें, तो मेरा काम बन जाएँ।"

मैं गिरा। सत्याग्रह की लड़ाई के मोहने मेरे अन्दर जीने का लोभ पैदा कर दिया और मैंने प्रतिज्ञा के अक्षरार्थ के पालन से संतोष मानकर उसकी आत्मा का हनन किया। यद्यपि दूध की प्रतिज्ञा लेते समय मेरे सामने गाय-मैंस ही थीं, फिर भी मेरी प्रतिज्ञा दूध मात्र की मानी जानी चाहिए और जब तक मैं पशु के दूध मात्र का आहार के रूप में निषिद्ध मानता हूँ, तब तक मुझे उसे लेने का अधिकार नहीं, इस बातको जानते हुए भी मैं बकरी का दूध लेने को तैयार हो गया। मेरे इस कार्यका डंक अभी तक मिटा नहीं है और बकरी का दूध छोड़ने के विषय में मेरा चिन्तन तो चल ही रहा है। किन्तु सेवा करने का महा सूक्ष्म मोह, जो मेरे पीछे पड़ा है, मुझे छोड़ता नहीं।

बकरी का दूध शुरू करने के कुछ दिन बाद डॉ. दलाल ने गुदाद्वार की दरारों का ओपरेशन किया और वह बहुत सफल हुआ।

भाग-१३: रोलट एक्ट और राजनीति में प्रवेश

५१. रौलट एक्ट

बिछौना छोड़कर उठने की कुछ आशा बंध रही थी और अखबार वगैरा पढ़ने लगा ही था कि इतने में रौलट कमेटी की रिपोर्ट मेरे हाथ में आयी। उसकी सिफारिशें पढ़कर मैं चौका। वल्लभभाई प्रायः प्रतिदिन मुझे देखने आते थे। मैंने उनसे बात की और सुझाया कि इस विषय में हमें कुछ करना चाहिए। "क्या किया जा सकता है ?" इसके उत्तर में मैंने कहा: "यदि थोड़े लोग भी इस सम्बन्ध में प्रतिज्ञा करनेवाले मिल जाएँ तो, और कमेटी की सिफारिश के अनुसार कानून बने तो, हमें सत्याग्रह शुरू करना चाहिए। यदि मैं बिछौने पर पड़ा न होता, तो अकेला भी इसमें सूझता और यह आशा रखता कि दूसरे लोग बाद में आ मिलेंगे। किन्तु अपनी लाचार स्थिति में अकेले जूझने की मुझमें बिलकुल शक्ति नहीं है।"

अभी बिल गजट में नहीं छपा था। मेरा शरीर कमजोर था, फिर भी मैंने लम्बी यात्रा का खतरा उठाया। मुझमें ऊँची आवाज से बोलने की शक्ति नहीं आयी थी। पर मुझे लगा कि मद्रास से आया हुआ निमंत्रण स्वीकार करना ही चाहिए। वे सेलम छोड़कर मद्रास में वकालत करनेवाले थे। मैं प्रतिदिन उनके साथ लड़ाई की रचना के विषय में चर्चा करता था। सभाओं के सिवा मुझे और कुछ सूझता ही न था।

इस प्रकार मन्थन-चिन्तन चल रहा था कि इतने में समाचार मिला कि बिल कानून के रूप में गजट में छप गया है। इस खबर के बाद की रात को मैं विचार करते-करते सो गया। सवेरे जल्दी जाग उठा। अर्धनिद्रा की दशा रही होगी, ऐसे में मुझे सपने में एक विचार सुझा। मैंने सवेरे ही सवेरे रामगोपालाचार्य को बुलाया और कहा:

"मुझे रात स्वप्नावस्था में यह विचार सुझा कि इस कानून के जवाब में हम सारे देश को हड़ताल करने की सूचना दें। सत्याग्रह आत्मशुद्धि की लड़ाई है। वह धार्मिक युद्ध है।

धर्मकार्य का आरंभ शुद्धि से करना ठीक मालूम होता है। उस दिन सब उपवास करें और काम-धंधा बन्द रखें।

राजगोपालाचार्य को यह सूचना बहुत अच्छी लगी। बाद में दूसरे मित्रों को तुरन्त इसकी जानकारी दी गयी। सबने इसका स्वागत किया। मैंने एक छोटी-सी विज्ञप्ति तैयार कर ली। पहले १९१९ के मार्च की ३० वीं तारीख रखी गयी थी। बाद में ६ अप्रैल रखी गयी।

समूचे हिन्दुस्तान में-शहरों में और गाँवों में हड़ताल हुई। वह दृश्य भव्य था।

७ अप्रैल की रात को मैं दिल्ली-अमृतसर जाने के लिए रवाना हुआ। पलवल स्टेशन आने के पहले ही पुलिस अधिकारी ने मेरे हाथ पर आदेश-पत्र रखा। आदेश इस प्रकार का था: "आपके पंजाब में प्रवेश करने से अशांति बढ़ने का डर है, अतएव आप पंजाब की सीमा में प्रवेश न करें। आदेश-पत्र देकर पुलिसने मुझे उतर जाने को कहा। मैंने उतरने से इनकार किया और कहा: "मैं अशांति बढ़ाने नहीं, बल्कि निमंत्रण पाकर अशांति घटाने के लिए जाना चाहता हूँ। इसलिए खेद है कि मुझसे उस आदेश का पालन नहीं हो सकेगा।"

मुझे पलवल स्टेशन पर उतार लिया गया और पुलिस के हवाले किया गया। फिर दिल्ली से आनेवाली किसी ट्रेन के तीसरे दर्जे के डिब्बे में मुझे बैठाया गया और साथ में पुलिस का दल भी बैठा | मथुरा पहुँचने पर मुझे पुलिस की बारक में ले गये। मेरा क्या होगा और मुझे कहाँ ले जाना है, सो कोई पुलिस अधिकारी मुझे बता न सका। सुबह ४ बजे मुझे जगाया गया और बम्बई की ओर जानेवाली मालगाड़ी में बैठा दिया गया।

मैं मोटर में बैठ गया। पायधूनी पहुँचते ही रास्ते में भारी भीड़ दिखायी दी। लोग मुझे देखकर हर्षोन्मत्त हो उठे। अब जुलूस बना। 'वन्दे मातरम्' और 'अल्लाहो अकबर' के नारों से आकाश गूँज उठा। पायधूनी पर घुड़सवार दिखायी दिये। ऊपर से ईटों की वर्षा हो रही थी। मैं हाथ जोड़कर लोगों से प्रार्थना कर रहा था कि वे शांत रहें। पर जान पड़ा कि हम भी ईटों की इस बौछार से बच नहीं पाएँगे। अब्दुर्रहमान गली में से क्राफड़े मारकेट की ओर जाते हुए जुलूस को रोकने के लिए घुड़सवारों की एक टुकडी सामने से आ पहुँची।

वे जुलूस को किले की और जाने से रोकने की कोशिश कर रहे थे। लोग वहाँ समा नहीं रहे थे। लोगों ने पुलिस की पाँत को चीरकर आगे बढ़ने के लिए जोर लगाया। वहाँ हालत ऐसी नहीं थी कि मेरी आवाज सुनायी पड़ सके। यह देखकर घुड़सवारों की टुकड़ी के अफसर ने भीड़ को तितर-बितर करने का हुकम दिया और अपने भालों को घुमाते हुए इस टुकड़ी ने एकदम घोड़े दौड़ाने के शुरू कर दिये। मुझे डर लगा कि उनके भाले हमारा काम तमाम कर दें तो आश्चर्य नहीं। पर मेरा वह डर निराधार था। बगल से होकर सारे भाले रेलगाड़ी की गति से सनसनाते हुए दूर निकल जाते थे। लोगों की भीड़ में दरार पड़ी भगदड़ मच गई। कोई कुचले गये। कोई घायल हुए। घुड़सवारों को निकलने के लिए रास्ता नहीं था। लोगों के लिए आसपास बिखरने का रास्ता नहीं था। वे पीछे लौटें तो उधर भी हजारों लोग ठसाठस भरे हुए थे। सारा दृश्य भयंकर प्रतीत हुआ। घुड़सवार और जनता दोनों पागल-जैसे मालूम हुए।

इस तरह लोगों को तितर-बितर किया गया और आगे बढ़ने से रोका गया। हमारी मोटर को आगे जाने दिया गया। मैंने कमिशनर के कार्यालय के सामने मोटर रुकवाई और मैं उनसे पुलिस के व्यवहार की शिकायत करने के लिए उतरा।

अहमदाबाद में उपद्रव हुआ। मैं अहमदाबाद गया। मुझे पता चला कि नड़ियाद के पास रेल की पटरी उखाड़ने की कोशिश भी हुई थी। वीरमगाम में एक सरकारी कर्मचारी का खून हो गया था। अहमदाबाद पहुँचा तब वहाँ मार्शल लॉ जारी था। लोगों में आतंक फैला हुआ था। लोगों ने जैसा किया वैसा पाया और उसका व्याज भी पाया।

मुझे कमिशनर मि. प्रेट के पास ले जाने के लिए एक आदमी स्टेशन पर हाजिर था। मैं उनके पास गया। वे बहुत गुस्से में थे। मैंने उन्हें शान्ति से उत्तर दिया। जो हत्या हुई थी उसके लिए मैंने खेद प्रकट किया। यह भी सुझाया कि मार्शल लॉ की आवश्यकता नहीं है, और पुनः शान्ति स्थापित करने के लिए जो उपाय करने जरूरी हों, सो करने की अपनी तैयारी बतायी। मैंने आम सभा बुलाने की माँग की। यह सभा आश्रम की भूमि पर करने की अपनी इच्छा प्रकट की। उन्हें यह बात अच्छी लगी। जहाँ तक मुझे याद है, मैंने रविवार

ता. १३ अप्रैल को सभा की थी। मार्शल लॉ भी उसी दिन अथवा दूसरे दिन रद हुआ था। इस सभा में मैंने लोगों को उनके अपने दोष दिखाने का प्रयत्न किया। मैंने प्रयाश्चित के रूप में तीन दिन के उपवास किये और लोगों को एक दिन का उपवास करने की सलाह दी। जिन्होंने हत्या वगैरा में हिस्सा लिया हो उन्हें मैंने सुझाया कि वे अपना अपराध स्वीकार कर लें|

मैंने अपना धर्म स्पष्ट देखा। जिन मजदूरों आदि के बीच मैंने इतना समय बिताया था, जिनकी मैंने सेवा की थी और जिनके विषय में मैं कुछ अच्छे व्यवहार की आशा रखता था, उन्होंने उपद्रव में हिस्सा लिया, यह मुझे असह्य मालूम हुआ और मैंने अपने को उनके दोष में हिस्सेदार माना।

मैने स्वयं निश्चय कर लिया था कि जब तक लोग शांति का पाठ न सीख लें, तब तक सत्याग्रह मुलतवी रखा जाए। इससे वे प्रसन्न हुए।

भाग-१४: खादी का जन्म

५२. खादी का जन्म

आश्रम के खुलते ही उसमें करघा शुरू किया था।

हमें तो अब अपने कपड़े तैयार करके पहनने थे। इसलिए आश्रमवासियों ने मिल के कपड़े पहनना बंद किया और यह निश्चय किया कि ये हाथ-करघे पर देशी मिल के सूत का बुना हुआ कपड़ा पहनेंगे। इस प्रकार विशेष रूप से तैयार कराया हुआ कपड़ा बुनवाकर हमने पहना और मित्रों में उसका प्रचार किया। यों हम कातनेवाली मिलों के अवैतनिक एजेण्ट बने। मिलों के सम्पर्क में आने पर उनकी व्यवस्था की और उनकी लाचारी की जानकारी हमें मिली। हमने देखा कि मिलों का ध्येय खुद कातकर खुद ही बुनना था। वे हाथ-करघों की सहायता स्वेच्छा से नहीं, बल्कि अनिच्छा से करती थीं। यह सब देखकर हम हाथ से कातने के लिए अधीर हो उठे। हमने देखा कि जब तक हाथ से कातेंगे नहीं, तब तक हमारी पराधीनता बनी रहेगी। मिलों के एजेण्ट बनकर हम देशसेवा करते हैं, ऐसा हमें प्रतीत नहीं हुआ।

लेकिन न तो कहीं चरखा मिलता था और न कोई चरखे का चलानेवाला मिलता था।

जो इस विषय में कुछ बता सकता था, मैं पूछताछ किया करता था।

मेरे गुजराती मित्र मुझे भड़ौच शिक्षा-परिषद में घसीट ले गये थे। वहाँ महासाहसी विधवा बहन गंगाबाई मुझे मिलीं। अपना दुःख मैंने उनके सामने रखा। चरखे की खोज में भटकने की प्रतिज्ञा करके उन्होंने मेरा बोझ हलका कर दिया।

गुजरात में अच्छी तरह भटक चुकने के बाद गायकवाड़ के वीजापुर गाँव में गंगाबहन को चरखा मिला। वहाँ बहुत से कुटुम्बों के पास चरखा था, जिसे उठाकर उन्होंने छत पर चढ़ा दिया था। पर यदि कोई उनका सूत खरीद ले और उन्हें पुनी मुहैया कर दे, तो वे कातने को तैयार थे। गंगाबहन ने मुझे खबर भेजी। मेरे हर्ष का कोई पार न रहा। पूनी मुहैया करने

का काम मुश्किल मालूम हुआ। स्व. भाई उभर सोबानी से चर्चा करने पर उन्होंने अपनी मिल से पूनी की गुछलियाँ भेजने का जिम्मा लिया।

दाम देकर पूनियाँ लेने का निश्चय करने में मुझे संकोच हुआ। इसके सिवा, मिल की

पूनियाँ से सूत कतवाना मुझे बहुत दोषपूर्ण मालूम हुआ। अगर मिल की पूनियाँ हम लेते हैं, तो फिर मिल का सूत लेने में क्या दोष है ? हमारे पूर्वजों के पास मिल की पूनियाँ कहाँ थीं ? वे किस तरह पूनियाँ तैयार करते होंगे ? मैंने गंगा बहन को लिखा और एक पिंजारे को खोज निकाला। उसे ३५ रूपये या इससे अधिक वेतन पर रखा गया। बालकों को पूनी बनाना सिखाया गया। मैंने रुई की भिक्षा माँगी। आश्रम में अब चरखे का प्रवेश होने में देर न लगी।

५३. पूर्णाहुति

अब इन प्रकरणों को समाप्त करने का समय आ पहुँचा है।

इससे आगे का मेरा जीवन इतना अधिक सार्वजनिक हो गया है कि शायद ही कोई चीज ऐसी हो, जिसे जनता जानती न हो।

यह कहना गलत नहीं होगा कि इसके आगे मेरी कलम ही चलने से इनकार करती है।

पाठकों से बिदा लेते हुए मुझे दुःख होता है। मेरे निकट अपने इन प्रयोगों की बड़ी कीमत है। मैं नहीं जानता कि मैं उनका यथार्थ वर्णन कर सका हूँ या नहीं। यथार्थ वर्णन करने में मैंने कोई कसर नहीं रखी है। सत्य को मैंने जिस रूप में देखा है, जिस मार्ग से देखा है, उसे उसी तरह प्रकट करने का मैंने सतत प्रयत्न किया है और पाठकों के लिए उसका वर्णन करके चित्त में शांति का अनुभव किया है। क्योंकि मैंने आशा यह रखी है कि इससे पाठकों में सत्य और अहिंसा के प्रति अधिक आस्था उत्पन्न होगी।

शब्दार्थ

१. जन्म और मातापिता

१. दिवानः मंत्री, वजीर

२. बटोरनाः एकत्र करना, धन जुटाना

३. संपत्ति: धन संपत्ति

४. दर्जे का: स्तर, कक्षा

५. सुलझाना: हल करना

६. होश: चेतना, बुद्धि

७. चातुर्मासिः चौमासा के चार मास

८. ब्रतः पवित्र संकल्प

९ चान्द्रायण: महीने भर का एक कठिन व्रत जिसमें चंद्रमा के घटने-बढ़ने के अनुसार आहार घटाना-बढ़ाना पड़ता है।

२. बचपन

१. उपनगरः नगर के आसपास बसा हुआ बाहरी भाग

२. धोखा: छल-कपट

३. शरमीला: लाजभरा, लज्जाशील, लज्जालु

४. मजाक: परिहास, हंसी, दिल्लगी

५. हिज्जे: वर्तनी

६. नोकः सिरा-चीज का आगे का पतला सिरा, अग्रभाग

७. काजी: न्याय देनेवाला अधिकारी

८. सबक: पाठ, बोधपाठ

९ उलाहना: भूल या अपराध को दुःखपूर्वक जताना, गिला, शिकायत

१० अल जा को टालना--आलस्य या शिथिलता का अनुभव करना

११. काँवरः बहँगी-सामान ले जाने के लिए बनी कांवड़

१२. छात्रवृत्तिः विद्यार्थी को विद्याभ्यास के लिए दी जानेवाली आर्थिक सहायता

१३. डाँटना: क्रोध में आकर झिड़कना

१४. अनिवार्य : लाजमी

१५. मनमसोलकर रह जानाः मन को दबाकर रहना

१६. गाफिल: बेदरकार

१७. जुर्माना: दंड

१८. सिलसिला: क्रम बाहर

१९ पके घड़े पर: समय बित जाने पर प्रयास करना

३. बालविवाह

१. अनुमति : इजाजत

२. वक्रताः टेढापन-कुटिलता

४, दुःखद प्रसंग

१. जेठेः बड़े भाई

२. निर्वीर्यः निर्माल्य, डरपोक

३. फोड़े: फफोले, शारीरिक विकार के कारण होनेवाला व्रण

४. गठीले: मजबूत शरीर

५ न्योतनाः निमंत्रित करना-न्योता देना

६ कै: वमन, उलटी

७. प्रलोभनः लालच

८. कुरेदनाः खुरचना, बेचैनी पैदा करना

९. जता दिया: बता दिया-कह दिया

५. चोरी

१. रिश्तेदार: संबंधी

२. ढूँठः जली हुई पीकर फेंक दी गई बीड़ी के टुकड़े

३. दंठलः धुआँ पार निकल सके ऐसे पौधे के दांड

४. दम घुटनाः साँस लेना मुश्किल हो जाना।

५. कर्ज: उधार

६. ठोसः नक्कर-मजबूत-खोखला न हो ऐसा

७. तख्रः लकड़ी की बड़ी खाट

८. भगन्दरः गुदा का एक रोग

६. पिताजी की बीमारी और मृत्यु

१. शय्यावशः बिछाने में ही पड़े रहना।

२. टहलना: घूमना

७. धर्म की झाँकी

१. नर्स: परिचारिका

२. बुराई: निंदा

३. अरूचि: अनिच्छा, घृणा, नफरत

८. विलायत की तैयारी

१. शफतपूर्वक : प्रतिज्ञापूर्वक

२. खलबली: हंगामा-विरोध का तूफान, हलचल

३. जातिच्यूत: जाति से निष्कासित कर देता - जाति बाहर

४. तलब: खुलासा माँगना

९. आखिर विलायत पहुँचा

१. भीरूता: डरपोकता, शर्मिलापना

२. नतीजा: परिणाम

३. घुलमिल जानाः मिल जाना, हिलमिल जाना

४. पाथेयः मार्ग का भोजन, खाद्य पदार्थ

५. मूर्तिमानः तादृश्य, मूर्तिर्त सम्मुख याद आना

६. परहेज: पाबंदी-संयमपूर्वक रहना

७. सरौता: सुपारी कारने का साधन, सूड़ी

१०. मेरी पसन्द

१. ओटमील: जई का आटा

२. लपसीः लापसी

३. आड़: बहाना, सहारा

४. टस से मस नहीं होना: अडग रहना

५. हिमायत: पृष्ठपोषण--समर्थन

११. सभ्य पोशाक में

१. जंगली: असभ्य

२. समरसः एकरूपता

३. लिजाहः अंदाज-अनुपात

४. बत्ती: दियासलाई
५. हप्तों में: सप्ताह में
६. पेशा: धंधा
७. धुन: लगन
८. जंपाल: प्रपंच, बखेडा, उलझन
९ सनक: धुन, लगन

१२. फेरफार

१. कस गया: मजबूत बना
२. बेफिकरी: चिंता न होना
३. बूते के बाहरः शक्ति से बाहर
४. तंत्री: आर्थिक कठिनाई, कमी
५. अंगीठी : बोरसी-चूल्हा
६. भुलावा: दलील के बहकावे में आकर।

१३. लज्जाशीलता-मेरी ढ़ाल

१. सकुचाता: संकोच होना
२. फजीहतः बहुत अधिक दुर्दशा
३. मितव्ययः कम बोलना
४. परिपक्व: अच्छी तरह पका हुआ, पूर्ण पक्व, पूर्ण विकसित प्रौढ़

१४. धर्मों का परिचय

१. भनक: ध्वनि-धीमी और अस्पष्ट ध्वनि

१५. भारत में वापसी

१. अधीर: व्याकुल, उतावला
२. फूटफूटकर रोनाः जोर से रोना-धोना
३. खुले तीर से: खुल्लंखुला-बिना छूप के-छूप के
४. तड़ः एकही जातिया समाज में होनेवाला विभाग, पक्ष
५. मुवक्किल: वह जो मुकदमा आदि लड़ने के लिए अपना वकील नियुक्त करना हो
६. मुकदमा: केस

७. आमदनी: आय

८. जिरहः वे प्रश्न, जो प्रतिपक्षी या उसका वकील बयान की सच्चाई जाँचने के लिए करे।

९. औसत: बीच का, करीब करीब, मामूली, साधारण

१०. वसीलाः संबंध, आश्रय, सहायता

१६. पहला आघात

१. शिकायत: फरियाद, उलाहना, उपालंभ

२. सिफारिश: क्षमा करने के लिये या किसी के पक्ष में कुछ कहना, सुनना संस्तुति

३. दुनियादारी : सांसारिक प्रपंच, संसार का जंजाल, व्यवहार-कुशलता

४. अकड़ जाना: अभिमान करना, ऐंठना, हठ करना, जिद करना

५. चपरासी: सेवक, पटावाला, प्यादा।

६. घसीटा: पत्र लिखा

७. तसल्ली: आश्वासन, ढ़ाढस, सांत्वना

८. सिखावन: सीख

९. उल्लंघन: आज्ञा, नियम, प्रथा, रीति आदि का पालन न करते हुए उसका अतिक्रमण करना

१०. नालिश: किसी के संबंध में न जानेवाली फरियाद, दावा, शिकायत

११. रियासती षड़यंत्र: राजकाज के संबंध में षड़यंत्र, प्रपंच

१२. अर्दीलि : साहब, नौकर, सेवक, चपरासी

१३. सरिश्तेदार : किसी विभाग का प्रधान कर्मचारी

१८. प्रिटारिया जाते हुए

१. वर्ण: रंग

२. इरादा: इच्छा

३. रंग-द्वैष: काला-गोरा का भेद और नफरत का भाव

४. फैसला: निर्णय

५. सुख-सुविधा: आराम, देखभाल

६. सिकरम-बग्घी: दो या चार घोड़ोंवाली गाड़ी

७. कुली: हिंदुस्तानी मजदूर को कुली' कहते थे।

८. कोचवान: बग्घी को हाँकनेवाला।

९. झुँझलाहट: अकुलाना

१०. सामी: कुली

११. सीखचे : सड़, सलाख
१२. घूरनाः क्रोध भरी निगाहों से कतराना
१३. मूँगा: मौन, मूक
१४. मुनासिबः उचित, मनपसंद
१५. पेच: भेद
१६. डाटकर: धारण करके
१७. गिन्नी : दक्षिण अफ्रिका का चलन, सिक्का
१८. फॉसिए नहीं: फँसाना नहीं, दोष बताना नहीं।
१९. आडे हाथों लेना: धमकाना, डॉटना
२०. इतमीनान से : शान्ति पूर्वक, आराम से

१९. पिटोरिया में पहला दिन

१. अजनबी: अनजान
२. टिका लेगा: ठहरने का बंदोबस्त करेगा
३. महसूस करना: सोच-विचार करना।
४. राय: अभिप्राय-सलाह
५. गुत्थियाँ: उलझन, कठिनाई
६. भटियारा: सराई का प्रबंधक टिकने, खाने-पीने आदि की व्यवस्था करनेवाला

२०. हिन्दुस्तानियों से परिचय

१. कड़ा: सख्त
२. परवाना: अधिकारपत्र
३. अहाता: बरंडा-सुरक्षा की दीवार
४. गवाही: बयान, साक्ष्य, साक्षी

२१. मुकदमे की तैयारी

१. जी-जोड़: जी लगाकर, तनतोड़
२. पहलू: गुणदोष आदि की दृष्टि से किसी-किसी वस्तु के भिन्न-भिन्न अंग और पक्ष
३. पाटनाः मिटाना, भरना

२२. इन्सान ने दरखास्त की ...

१. भोज: सामूहिक भोजन, समारोह

२. तन्मयः लीन, समर्पित

३. उपनिवेशमंत्री : दूसरे देश से आकर बसे समुदाय के लोगों का राजनीतिक अधिकार वाले मंत्री

२३. तीन पौण्ड का कर

१. इखः गन्ना, जिसके रस में से शक्कर बनती है।

२. प्रतिद्वंद्विविता: स्पर्धा

भाग-५: हिंदुस्तान की मुलाकात

२४. हिंदुस्तान में

१. संस्करण: आवृत्ति, संक्षिप्त रूप

२५. दक्षिण अफ्रिका में तुफान की आगाही

१. बन्दरगाह: बंदर, समुद्र के किनारे वह स्थान, जहाँ जहाज ठहतरते हैं।

२. सूतक: छूत की बिमारी को लेकर जहाज को रखना, एक तरफ रोके रखना

३. धक्का: गोदी-समुद्र का घाट जहाँ पर जहाजों पर माल चढ़ाया-उतारा जाता है।

४. गशः मूर्छा, चक्कर

५. दस्ता: पुलिस कुमक, टुकड़ी

६. वर्दी: निश्चित पोशाक

७. तस्तरी: धातु की चादर या छोटी चपटी तथा छिछली थाली

८. खुफिया पुलिस: सी.आई.डी. पुलिस गुप्तचर, जासूस

९. जुक्कड़: जहाँ दो गलियाँ मिलती हों ऐसा चौराहा, शिरा-छोर, निकला हुआ कोना

१०. हमलावर: आक्रमण करनेवाला, हमला करनेवाला

११. हुल्लड़: दंगा, तूफान मचाना।

२६. सादगी

१. दोहरा: दो गुना

२. कलफ: चावल, आरारोट आदि को पकाकर बनाई हुई पतली लई जिसे धूले कपड़ों पर लगाकर उनकी तह कड़ी की जाती हैं, मांड

३. झड़ना: गिरना

४. घाताः मुनाफा

५. छाँटना: काटना

६. कहकहे: हँसी-मजाक

२७. एक पुण्य स्मरण और प्रायश्चित

१. मुहर्रिरि: मुंशी-लेखक क्लर्क

२. मोरियाँ: छोटी नाली

३. कलह: टंटा

४. डांट-फटकार: जुल्म-डांट-:डपट

२९. कीमती उपहार

१. मसविदा: मुसद्दा (ड्राफ्ट)

२. वाग्धारा: वाणी प्रवाह

३. औचित्य: महत्त्व, योग्यता

३०. मेरा पहला काँग्रेस

१. नहीं तीन में नहीं तेरह में: कहीं का भी नहीं

२. पाखानाः संडास

३. बैरा: नौकर

४. विषय-निर्वाचिनी : विषय विचारिणी

५. मुहर लग जाना: स्वीकार हो जाना

३२. फिर दक्षिण अफ्रिका

१. डेप्युटेशन: प्रतिनिधि मंडल

२. जब जागे तब सवेरा: जब खयाल आया तब से पुनः शुरूआत करना।

३. मुकाबला: सामना

३३. गीता का अभ्यास

१. कण्ठ: मुखपाठ, कंठस्थ

३४. एक पुस्तक का चमत्कारी प्रभाव

१. घूंघले रूप में: अस्पष्ट रूप में, जो साफ न दिखाई दे ऐसा

३५. फीनिक्स की स्थापना

१. बिड़म्बनाओं : अड़चने, अवरोध

३६. जुलू-विद्रोह

१. अनसोयी: यकायक, बिना कोई संभावना की

२. विद्रोह: आंदोलन-बलवा

३. मुदती पद: निश्चित समय ओहदा

३७. कस्तूरबाई की दृढ़ता

१. क्षीण: कृश, दुर्बल

२. शौरवाः सूप, रसा, उबाली हुई वस्तु का पानी, जूश

३. टस से मस न होनाः अपनी बात पर अड़िग रहना।

४. हैमकः स्ट्रेचर

५. हड्डियों का ढाँचा: कंकाल

६. पुष्ट: शरीर भरने लगा, सुधरने लगा

३८. घर में सत्याग्रह

१. प्रेम ऊँडेलने का: प्रेम जताने का

२. हठीले: हटठाग्रही

३९. सत्याग्रह का महत्त्व

१. बिलः कानून का मसौदा-जो विधानसभा या संसद में पेश किया जाता है।

२. धाराएँ: कलमें

३. घृणा: नफरत

४०. कारावास

१. अफसर: अधिकारी

२. आंदोलन: लड़ाई

३. हिरासत: कैद

४. पखवाड़ा: पंदरह दिन--मास के--आधा मास

५. आगंतुकः नये आने वाले

६. सुलह: संधि

७. मशवरा: चर्चा-विचार

८. मसौदा: मुसद्दो-संधि पत्रक

४१. हमला

१. उभाड़ना: कुछ करने के लिए उत्तेजित या उत्साहित करना

४२. सत्याग्रह का इतिहास

१. हक्का-बक्का रह जाना: चकित रह जाना, सिहर उठना

२. खलबली: हलचल, हंगामा

३. खदान: खान

४४. पूना में

१. फूल उठना: खुशी होना

२. उगाहना: धन इकट्ठा करना

४५. आश्रम की स्थापना

१. कायम होना: स्थापना होना

२. अंत्यज: हरिजन

३. अडचन: बाधा-अवरोध

४. चरसवाला: रँहटवाला

५. भोंपू: आवाज, होर्न

४६. नील का दाम

१. नील: नील रंग का पाउडर जो श्वेत वस्त्रों में डालते हैं

२. निवरसनः चले जाने का आदेश

३. संयतः काबू में

४. अहाताः आँगन

४७. उलझ पहलू

१.. आमदो रफ्त: आवन जावन

२. निलाह: मालिक

४८. मजदूरों के संपर्क में

१. तनख्वाह: पगार, वेतन

२. रहनुमाई: मदद, सहायता

३. हस्तक्षेप: दखल अंदाजी

४. जोर-जबरदस्ती : दबाव, जबरन

५. टेक: संकल्प, प्रतिज्ञा

४९, खेड़ा-सत्याग्रह

१. दम लेना: श्वास लेना

२. अकाल की सी: दुष्काल, सूखा जैसी

३. लगानः महसूल

४. कूती: गिनी जाए-समझा जाए

५. अनुनयः विनय-आजीजी-विवेकपूर्वक विनंती-माँग

६. परामर्शः सलाह मशविरा

७. कुर्की : जब्ती

८. मुलतवी: स्थगित

५०. मृत्यु-शय्या पर

१. पेचिश: बार बार टटट्टी जाना

२. न्योता: निमंत्रण

३. हिफाजतः देखभाल

४. फूँका: पशु पर होनेवाला अत्याचार

५. हनन: खत्म करना

६. डंक: चुभन

५१. रोलट एक्ट

१. जूझता: जंग खेलता

२. विज्ञप्ति: सूचना

३. बौछार: वर्षा का पानी जोरों से बरसना

४. पाता: पंक्तियाँ-भीड़

५. काम तमाम कर देना: मार डालना, खतम कर देना

६. सनसनाते हुए: सावधानीपूर्वक-बचाते हुए निकल जाते थे

७. भगदड़ : दौड़ा-दौडी

८. पटरी: रेल की पटरियाँ-जिस पटरी पर गाड़ी चलती है

९. अपराध: गुन्हा

५२. खादी का जन्म

१. करधा: हाथशाल-कपड़ा बुनने का लकड़ी का साधन

२. अधीर हो उठना: उतावले होने लगे

३. मुहैया: उपलब्ध कराना

४. गुछलियाँ : जत्था

५३. पूर्णाहुति

१. गलतः असत्य

२. यथार्थ: सही-सही

३. कसर: चुक या कमी

स्वाध्याय

[पुस्तक के आधार पर स्वाध्याय में लिये प्रत्येक प्रश्न हैं। इसमें हकीकत के प्रश्न हैं। उसके उत्तर विद्यार्थी सरलता से दे सकेंगे। किन्तु जिस प्रश्न में अभिप्राय या कोई विषय की चर्चा के बारे में उत्तर देने को कहा गया है इन प्रश्नों के विषय में शिक्षक जो भी प्रकरण पढ़ाता हो उस समय ही चर्चा के द्वारा समझाया जाए। बाद में विद्यार्थी अपने शब्दों में उत्तर लिखे ऐसा अपेक्षित है।]

प्रकरण-१

गांधीजी की माता कितनी धर्मपरायण थीं? अपने शब्दों में लिखो।

प्रकरण-२

१. गांधीजी सत्य को कितना चाहते थे उसे बताते हुये उनके पाठशाला के जीवन के दौरान प्रसंगों की घटी घटनाओं का वर्णन कीजिए।

२. क्या कारण था कि गांधीजी को श्रवण और हरिश्चंद्र की कहानी बहुत पसंद आ गई? इस

कहानी के बारे में आप जो जानते हैं उसे इसके साथ जोड़कर बताओ।

३. गांधीजी पढ़ाई में होशियार न थे किन्तु वे चारित्र को महत्त्व देते थे। आपको यह योग्य लगता है? क्यों?

४. सत्य बोलनेवाले और सत्य का आचरण करनेवाले को गाफिल भी न रहना चाहिए! ऐसा गांधीजी ने कहा है। यह पाठ उन्हें कब सीखने को मिला? यह बतायें।

प्रकरण-३

गांधीजी और कस्तूरबा के बाल विवाह की बातें अपने शब्दों में लिखो।

प्रकरण-४

१. माँसाहार करना चाहिए ऐसा गांधीजी किस कारण से मानने लगे।

२. उन्होंने मॉसाहार करना क्यों छोड़ दिया?

३. किसी को मित्र बनाने में सावधान रहना चाहिए, क्यों? इसके बारे में गांधीजी ने अपने अनुभव बताये हैं इसका वर्णन कीजिए।

प्रकरण- ५

१. बीड़ी पीने के बारे में गांधीजी के अनुभव बताइए।

२. चोरी के स्वीकार का (अ) गांधीजी के पिता पर और (ब) गांधीजी पर क्या असर हुआ? कारण देकर समझाइए।

३. गांधीजी किस लिये आत्महत्या करना चाहते थे? उन्होंने आत्महत्या करने का विचार क्यों छोड़ दिया?

प्रकरण-६

१. गांधीजी अपने बीमार पिता की सेवा किस तरह करते थे?

प्रकरण-७

१. गांधीजी को रंभा ने क्या समझाया? बड़े होने पर रंभा की सलाह उनको कैसे सहायक हुई?

२. रामायण के बारेमें गांधीजी के भाव कैसे थे? बचपन में उनके मनमें ऐसा भाव कैसे जन्मा?

३. आरंभ में अलग-अलग धर्म के बारे में उनका भाव कैसा था? इसका क्या कारण था?

४. उन्होंने ऐसा भाव सदा के लिये मन में संजोये रखा था। उनकी आम प्रार्थना तथा अन्य प्रवृत्तियों के बारे में आप जो भी जानते हैं इसके आधार पर दृष्टांत दीजिए।

५. गांधीजी के मतानुसार, जिसे आजीवन अमल में रखना चाहिए ऐसा धर्म का हार्द क्या है? धर्म (१) मंदिर जाना, पूजा-अर्चना करना और रिवाज निभाना उसमें और (२) कोई संप्रदाय में मानना उससे कुछ अधिक है ऐसा गांधीजी मानते थे ऐसा आप बता सकते हैं?

प्रकरण-८

विलायत पढ़ाई के लिये जाने से पूर्व गांधीजी के सामने कौन सी मुसीबतें आ पड़ी थीं? बताइए।

प्रकरण-९

१. स्टीमर पर गांधीजी को कैसी मुसीबतें उठानी पड़ी थीं?

२. 'रीति-रिवाज' यानी क्या? गांधीजी इंग्लैंड पहुँचे तब (१) पोशाक (२) आहार और रीत-रश्म में अंग्रेजी रीति-रिवाज को पालने में गांधीजी किस प्रकार भिन्न दिखाई दिये?

प्रकरण-१०

लंदन में शाकाहार भोजन प्राप्त करने में गांधीजी को कैसी मुसीबत पड़ी थी? वे शाकाहार के साथ क्यों जुड़े रहे उसे समझाइए।

प्रकरण-११

१. 'शिष्ट' पोशाक से अंग्रेज बनने के लिए गांधीजी ने क्या क्या किया?

२. वैसा करने का उन्होंने किस कारण से छोड़ दिया?

३. (१) पोशाक (२) बीड़ी-सिगार पीना, शराब पीना, (३) स्त्री-पुरुष के बीच के संबंध (४) स्वास्थ्य व्यवस्था और सार्वजनिक स्थानों की स्वच्छता और (५) समय पालन (६) व्यवसाय में प्रामाणिकता तथा (७) समूह-अनुशासन के बारे में पश्चिम के देशों की शिष्टता के बारे में हमें कैसा रूख अपनाना चाहिए?

इस के अतिरिक्त पश्चिम की शिष्टता में कुछ अपनाने लायक या निषेध योग्य हो तो उसकी और ध्यानाकर्षण कीजिए।

प्रकरण-१२

१. पैसे खर्च करने के बारे में गांधीजी कैसी सावधानी रखते थे? उसके तथा लंदन में विद्यार्थी थे तब उन्होंने किफायत करने में कैसे कैसे प्रयास किये थे उसे बताइए।

२. 'स्वाद का सही स्थान जीभ नहीं किन्तु मन है' ऐसे गांधीजी के विधान को गांधीजी के जीवन के प्रसंग पर से समझाइए।

३. गांधीजी ने अपने भोजन में किस कारण से कैसे कैसे परिवर्तन किये उसे बताईये।

४. गांधीजी की मान्यता थी कि हमें जीभ को स्वादिष्ट लगे इसके लिए नहीं किन्तु शरीर को बनाये रखने के लिए आहार लेना चाहिए। इसकी चर्चा करके आपका मत बताईए।

प्रकरण-१३

१. गांधीजी के शर्मिलेपनने कैसे उनके बचाव का साधन बनकर उनकी रक्षा की? शर्मिले स्वभाव से लाभ कैसे हो सकता है? उसे अपने खुद के अनुभव के आधार पर समझाइए।

प्रकरण-१४

१. गीता का कौन सा उपदेश गांधीजी को सबसे अधिक पसंद आ गया? उस उपदेश का क्या अर्थ होता है? आपके अनुभव के आधार लिखिए।

२. बाइबिल क्या है? 'गिरिप्रवचन' का उपदेश किसने दिया था? 'गिरिप्रवचन' की कौन सी बात गांधीजी को अधिक पसंद आयी?

३. बुद्ध के जीवन और संदेश में से गांधीजी क्या सीखे? भगवान बुद्ध के बारे में आप जो भी कुछ जानते हैं उसे लिखिए।

प्रकरण-१५

१. गांधीजी ने जातिच्युत करनेवाले जातिबन्धुओं को कैसे जीत लिये? गांधीजी ने यहि जाति में सामिल होने की चेष्टा की होती तो वे सफल हो सकते थे?

२. गांधीजी के उदाहरण पर से विरोधी को जीत लेने के लिये कैसा मार्ग लेना चाहिए? भलाई और सौजन्य का या बदला लेने की वृत्ति तथा तिरस्कार का? आपका निचोड़ दीजिए।

३. गांधीजी पहली बार वकील की हैसियत से अदालत में मुकदमा चलाने के लिये उपस्थित हुए तब के उनके अनुभव का वर्णन कीजिए।

प्रकरण-१६

१. पोरबंदर में ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट से मिलने के लिये जाते समय गांधीजी को जो कटु अनुभव हुआ उसे अपने शब्दों में लिखिए।

२. कैसे संयोग गांधीजी को हिन्दुस्तान छोड़ कर दक्षिण अफ्रिका जाने के लिये ले गये उसे बताइए।

प्रकरण-१७

१. दक्षिण अफ्रिका पहुँचते ही वहाँ के हिंदी भाईओं के बारे में गांधीजी पर कैसा असर पड़ा?

प्रकरण-१८

१. दक्षिण अफ्रिका में गांधीजी ने रेल में डरबन से मेरित्सबर्ग का पहला सफर किया उसका वर्णन कीजिए।

२. गांधीजी का चार्ल्सटाउन और स्टैंडटटन बीच का सिगराम का सफर और जोहानिसबर्ग से प्रिटोरिया रेल के सफर के अनुभव अपने शब्दों में लिखिए।

प्रकरण-१९

१. दक्षिण अफ्रिका में होटल में ठहरने की जगह प्राप्त करने में गांधीजी को हुए अनुभवों को लिखकर बताइए।

(आगे के प्रकरण के अनुभवों को भी सामिल कर लें।)

प्रकरण-२०

१. ट्रान्सवाल में हिंदीओं पर कैसी-कैसी मर्यादायें लादी गई थीं?

२. प्रिटोरिया में पटरी पर चलते समय हुये अनुभव का वर्णन कीजिए।

प्रकरण-२१

१. कानूनी विवादों के सुलझाने के लिये गांधीजी कौन सी पद्धति पसंद करते थे? क्यों? समझौते पर आना यानी क्या? उदाहरण देकर समझाइए।

प्रकरण-२२

१. अब्दुल्ला के मुकदमे का काम पूरा हो जाने के बाद, क्या कारण था कि गांधीजी ने हिंदुस्तान वापस लौटने की योजना छोड़ दी?

प्रकरण-२३

१. 'गिरमीटिया' यानी क्या? समझाइए।

२. हिंदी गिरमीटियों पर तीन पाउन्ड का कर क्यों डाला गया था?

प्रकरण-२४

१. दक्षिण अफ्रिका में बसे हिंदीओं के साथ जो भेद पूर्ण बूरा बरताव किया जाता था उसके बारे में हिन्द में लोकमत बनाने के लिये गांधीजीने क्या किया?

प्रकरण-२५

१. क्वोरेंन्टीन' का क्या मतलब है? किस लिए उसे रखा गया है?

२. गांधीजी के दक्षिण अफ्रिका से वापस लौट आने के विरुद्ध गोरों ने किस कारणवश विरोध किया था?

३. डरबन में तूफानी परिस्थिति में गांधीजी के आगमन का वर्णन कीजिए?

४. आखिर गोरों ने गांधीजी के विरुद्ध विरोध करना किस कारण छोड़ दिया?

प्रकरण-२६

१. अपने आप खुद के कपड़े धो लेना तथा अपने आप खुद के बाल काट लेने का गांधीजी के प्रयासों का वर्णन कीजिए।

२. स्वाश्रय' के गौरव और लाभ के बारे में निबंध लिखो।

३. दक्षिण अफ्रिका में हिन्दीओं के विरुद्ध रंगभेद की नीति अखत्यार की जाती थी, जैसी ही अपने देश में हम अछूतों के साथ जो भेदभाव पूर्ण व्यवहार करते हैं यह इसकी सजा है। ऐसे गांधीजी के विधान को समझाइए।

४. अछूत' गिने जाते लोगों को सुधारने के लिये क्या करना चाहिए?

प्रकरण-२७

१. पंचम जाति के मेहमान के पेशाब के बरतन खुद साफ नहीं करेंगी ऐसे कस्तूरबा के रूख के कारण गांधीजी-कस्तूरबा के बीच हुए क्लेश का प्रसंग अपने शब्दों में लिखिए।

२. उस किस्से से लोगों को सही व्यवहार करने तथा फर्ज अदा करने के लिये तुम क्या बोध लोगे? उनका सहयोग प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिए?

प्रकरण-२८

१. बोअर युद्ध में गांधीजी ने ब्रिटोश राज को कैसे मदद की? उन्होंने ऐसा क्यों किया?

प्रकरण-२९

१. किस कारण से गांधीजी ने उन को मिली कीमती भेंटों को स्वीकार करना ठीक नहीं है ऐसा माना?

२. जवहरात और गहनों का उपयोग न करना चाहिए ऐसे गांधीजी के विचार के साथ आप सहमत नहीं हैं? गहनों का उपयोग करना या नहीं करना चाहिए इस के बारे में कारण दीजिए।

प्रकरण-३०

१. गांधीजी ने महासभा की बैठक में पहली बार जब हिस्सा लिया, उनके अनुभव का वर्णन अपने शब्दों में लिखिए।

प्रकरण-३३

१. गांधीजी ने गीता किस तरह से कंठस्थ की थी? उसका वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

२. अपरिग्रह के बारे में गीता के उपदेश का गांधीजी पर कैसा असर पड़ा?

प्रकरण-३४

१. रस्किन के 'अन टु धिस लास्ट" (सर्वोदिय) पढ़कर उसमें से गांधीजी क्या सिखे यह तुम्हारे शब्दों में लिखिए।

२. गांधीजी ने उनके जीवन में जो जो कार्य किये उसकी जो कुछ जानकारी तुम्हें हो, उसमें 'अन टु धिस लास्ट' के उपदेश का उन्होंने कैसे अमल किया उसे बताइए।

प्रकरण-३६

१. 'झूलु बलवा' के समय गांधीजी ने कैसे मदद की?

२. 'झूलु बलवा' के समय और 'बोअर युद्ध' के समय गांधीजी ने जो काम किया यह अनुभव उनको जीवन में आने वाले सालों में काम आये थे ऐसा कह सकते हैं? उनका आश्रमजीवन के कार्यों के बारे में तुम जो भी जानते हो, उसके आधार पर विस्तार से लिखें।

प्रकरण-३७

१. बिमारी में कस्तूरबा ने 'बीफ टी' लेने से इनकार किया था उस घटना तथा इसके बारे में गांधीजी का भाव आपके शब्दों में लिखिए।

प्रकरण-३८

१. सामनेवाले का परिवर्तन कराने के लिये खुद सहन करने का मार्ग लेना अर्थात् सत्याग्रह ऐसा अर्थ करें तो कस्तूरबा को नमक और दलहन (द्विदल) छुडवाने के लिये गांधीजी ने कैसा सत्याग्रह किया? समझाइए।

२. तुमने कभी ऐसा सत्याग्रह किया है? उसमें सफलता प्राप्त हुई थी?

प्रकरण-३९

१. हिंदीओं के लिए लाजमी तौर से टीप और नया परवाना लेने के बारे में कानून के विरोध में अहिंसक आंदोलन को गांधीजी ने सत्याग्रह नाम क्यों दिया? उन्होंने ऐसे लग्न के लिए 'पेंसिव रेसिस्टन्स' शब्द का प्रयोग क्यों बंद कर दिया?

प्रकरण-४०

१. 'काला कानून' से पहचाना जाता ऐशियाटिक रेग्युलेशन ऐक्ट के खिलाफ, सत्याग्रह में क्या हुआ? इसके बारे में क्या समझौता हुआ?

प्रकरण-४१

१. गांधीजी पर मीरआलम के हमले का वर्णन तुम्हारे शब्दों में कीजिए।

२. गांधीजी मीरआलम को सजा न हो ऐसा क्यों चाहते थे? गांधीजी ने मीरआलम को इस तरह माफी दी उसका मीरआलम पर कैसा असर हुआ?

प्रकरण-४२

१. गांधीजी ने ऐशिथाटिक रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के सामने पुनः सत्याग्रह करने का क्यों निश्चय किया?

२. परवाना जला देने वाली सभा में क्या हुआ? यह तुम्हारे शब्दों में लिखिए।

३. आखिर में सरकार को ही समाधान के लिए आना पड़ेगा ऐसा मान कर गांधीजी ने अपनी सत्यग्रह की लड़त किस तरह तीव्र बनाई?

४. लड़त की अलग-अलग स्थिति का वर्णन कीजिए।

प्रकरण-४५

१. आश्रम में अत्यंज परिवार को प्रवेश देने में गांधीजी को कैसी मुसीबतों का सामना करना पड़ा? यह मुसीबत किस तरह हल हुई?

२. भारत के भिन्न-भिन्न भाषा बोलते, अलग-अलग जातिके विविध पंथ के लोगों में एकता की भावना पैदा करने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

३. ऐसी समस्या तुम्हारे अपने घर में आ जाए तो आप क्या कर सकते हो? लिखकर बताओं।

प्रकरण-४७

१. चंपारण में नील के मालिकों (नीलवरों) के राज को किस तरह खतम किया उसे तुम्हारे शब्दों में लिखिए।

२. गांधीजी के कामकाज को सत्याग्रह की रीति से जाँचो और उसमें कैसी सफलता प्राप्त हुई उसे बताओ।

प्रकरण-४८

१. मजदूरों की हड़ताल किस तरह चलाना चाहिए इसके बारे में गांधीजी के विचार बताइए।

२. अहमदाबाद के मिलमजदूरों की हडताल के समय में गांधीजी ने अनशन क्यों किये थे?

३. मजदूर-मालिक के विवाद का सुखद अंत लाने के लिए उपवास ने कैसी मदद की?

४. उपवास को सत्याग्रह किस तरह गिन सकते हैं? बताइए।

प्रकरण-४९

१. खेड़ा सत्याग्रह के बारे में टिप्पणी लिखो।

प्रकरण-५०

१. गांधीजी ने बकरी का दूध लेने का किस तरह प्रारंभ किया? इसके बारे में सविस्तर लिखो।

२. हम गाय की रक्षा करना चाहते हैं--उसका एक रास्ता गोवध को रोकना है। गाय को बचाना या रक्षा करने के लिये दूसरे कौन से उपाय ले सकते हैं।

प्रकरण-५१

१. गांधीजी ने रोलेट एक्ट के खिलाफ सत्याग्रह देशव्यापी हड़ताल से प्रारंभ किया था। बाद में उन्होंने सत्याग्रह स्थगित करने का तय किया। सत्याग्रह के ढ़ंग से गांधीजी का यह कदम ठीक था या नहीं उसे मुद्दों सहित लिखो।

प्रकरण-५२

१. आश्रम में चरखा पर कताई तथा पूनी बनाने का काम प्रारंभ करने में गांधीजी को हुई मुसीबतें बताइए।

२. गांधीजी किस लिए हाथ से कताई की, और हाथसे बुना कपड़ा (खादी) के लिए आग्रह रखते थे? मिल के कपड़े के बारे में उनका क्यों विरोध था?

३. गृहउद्योग विरुद्ध मिल उद्योग के लाभ तथा हानि बताइए और हमारे देश के लिए आप उसमें से किसे पसंद करते हैं? कारण सहित बताइए.